संपर्क भाषा भारती

साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, नवंबर—2022, RNI-50756

सहयोग 60/-

अपनी बात...

अब जब पिता जी और डॉ महेश चन्द्र गुप्त की बात मानते हुए यह तय किया कि जनसत्ता ज्वाइन नहीं करना है तो यह भी तय किया कि सुविधा भोगी बन कर लेखन का त्याग भी नहीं करना है।

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय-भारत सरकार) का कार्यालय बहुतों की पहुँच के बाहर रहा होगा किन्तु मेरे साथ ऐसा नहीं था। कार्यालय उन दिनों लोकनायका भवन में हुआ करता था। जबकि मेरा कार्यालय सीरी फोर्ट, एशियाड में स्थित था। भेल के तीन प्रमुख कार्यालय उन दिनों दिल्ली के अलग-अलग हिस्सों में स्थित थे। इत्तेफाक से उन दिनों हमारे कार्यालय से इन तीनों कार्यालयों और डिस्पेन्सरी को जोड़ने वाली बैट्री बस एशियाड से चलती थी। इस बैट्री बस का निर्माण भेल द्वारा ही किया गया था।

यह बस एशियाड से शुरू होती, उसका अगला स्टॉप लोधी कॉलोनी स्थित हमारा दूसरा कार्यालय होता। यहाँ से पार्लियामेंट स्ट्रीट जहां हमारा दूसरा कार्यालय और डिस्पेन्सरी थी। यहाँ से अगला और अंतिम स्टॉप हिंदुस्तान टाइम्स हाउस, कनॉट प्लेस होता था। यह बस सेवा कर्मचारियों की सुविधा और इन कार्यालयों में डाक लाने लेजाने केलिए उपयोगी थी। उन दिनों मेरे पास निजी वाहन नहीं था। मुझे स्कूटर/मोटर साइकिल चलाना आज तक नहीं आया। लोदी कॉलोनी में कर्मचारियों/डाक छोड़ने के बाद यह बस लोकनायक भवन के समीप से होकर गुजरती थी।

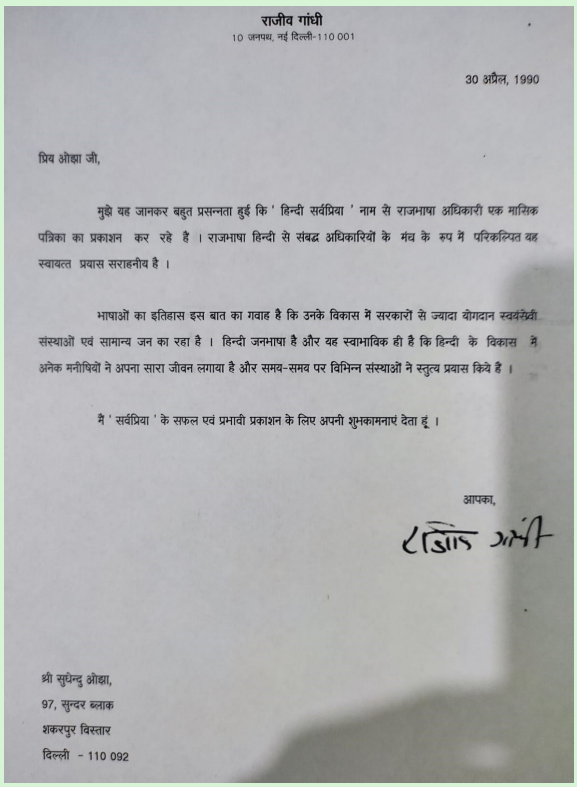

राजीव गांधी

10 जनपथ, नई दिल्ली-110 001

30 अप्रैल, 1990

प्रिय ओझा जी,

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि ' हिन्दी सर्वप्रिया ' नाम से राजभाषा अधिकारी एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर रहे है । राजभाषा हिन्दी से संबद्ध अधिकारियों के मंच के रूप में परिकल्पित यह स्वायत्त प्रयास सराहनीय है ।

भाषाओं का इतिहास इस बात का गवाह है कि उनके विकास में सरकारों से ज्यादा योगदान स्वयंसेवी संस्थाओं एवं सामान्य जन का रहा है । हिन्दी जनभाषा है और यह स्वाभाविक ही है कि हिन्दी के विकास में अनेक मनीषियों ने अपना सारा जीवन लगाया है और समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं ने स्तुत्य प्रयास किये है ।

मैं ' सर्वप्रिया ' के सफल एवं प्रभावी प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएं देता हूं ।

आपका,

राजीव गांधी

श्री सुधेन्दु ओझा,
97, सुन्दर ब्लाक
शकरपुर विस्तार
दिल्ली - 110 092

इसी बस से संपर्क भाषा भारती की कल्पना की उड़ान भी तय की गई। डॉ महेश चन्द्र गुप्त जी का मार्गदर्शन तो था ही, राजभाषा विभाग की पत्रिका के संपादक बजाज जी ने भी मेरी बहुत सहायता की। बजाज जी पत्रिका के उपसंपादक थे और नौकरी केलिए पानीपत से दिल्ली का दैनिक सफर तय किया करते थे, शायद उनका नाम गुरुदयाल बजाज था। मुझे सोसाइटी पंजीकृत करवाने और भारत सरकार के समाचार पत्र पंजीयन कार्यालय में कोई विशेष दिक्कत नहीं आई।

हाँ! दो-चार बार दिल्ली पुलिस मुख्यालय अवश्य जाना पड़ा। एक प्रपत्र होता था जिसमें प्रिन्टर का पूरा विवरण भर्ना पड़ता था, पत्रिका के तीन नाम प्रस्तावित करने पड़ते थे और इन्हें दिल्ली पुलिस के मुखालय द्वारा सत्यापित/रजिस्टर करने के बाद आरएनआई कार्यालय, रामकृष्ण पुरम, सैक्टर-1, के कार्यालय को भेजा जाता था। यह प्रक्रियाएँ पूरा होने में खासा अच्छा समय लेती थीं और धैर्य की परीक्षा भी। खैर! यह प्रक्रिया भी पूरी हुई और आरएनआई का पंजीकरण का पत्र और 'संपर्क भाषा भारती' नाम से पत्रिका प्रारम्भ करने की स्वीकृति भी आगई।

पत्रिका निकालने केलिए अभी एक अनिवार्यता और रह गई थी। वह थी भेल के मानव संसाधन विभाग से पत्रिका के सम्पादन की अनुमति प्राप्त करना। चूंकि, मैं भेल संस्थान से जुडने से पहले ही रेडियो, दूरदर्शन और समाचारपत्रों में लिख रहा था अतः मानव संसाधन विभाग ने मुझसे एक आवेदन लेकर मुझे इन एजेंसियों में लेखन की अनुमति दे दी थी।

चंद दिनों में ही मुझे संस्थान ने 'संपर्क भाषा भारती' के सम्पादन की अनुमति भी प्रदान कर दी।

पत्रिका के सम्पादन की अनुमति मिलने के बाद पत्रिका के प्रारम्भिक आंक की तैयारी और उसकी परिकल्पना में लग गया।

पत्रिका का पहला अंक ही 'श्री रामकथा' पर निकालना था। पूरे विश्व में व्याप्त राम कथा।

पत्रिका केलिए शुभकामना संदेश प्राप्त करने केलिए भी उस दौरान के मंत्रियों को पत्र लिखे गए।

सभी के शुभकामना संदेश प्राप्त हुए।

यहाँ तक की स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी जी के कार्यालय से भी उनके हस्ताक्षर में शुभकामना संदेश प्राप्त हुआ।

बात फिर जारी रहेगी....नवरात्रि, दुर्गा पूजा, दशहरा, दीपावली, प्रकाशपर्व और इस पूरे पर्व मास की अनंत, अशेष शुभकामनाएँ.......

(क्रमशः)

सादर,

सुधेन्दु ओझा

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

अनुक्रमणिका नवंबर—2022

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
1	संपादकीय		2
2	आस्तीन की साँप (कहानी)	रमेश मनोहरा	4-6
3	मास्क (लघुकथा)	मोहन राजेश	7
4	शक्ति (लघुकथा)	शील निगम	7
5	बड़ी नहीं होना चाहती (लघुकथा)	प्रियंका त्रिपाठी 'पांडेय'	8
6	कविता	डॉ० सत्यवीर 'मानव'	8
7	दीदी (लघुकथा)	आशा शैली	9
8	हिन्दी पखवाड़ा समाचार	ब्रजेश शर्मा	10
9	कविता	शिवानन्द सिंह 'सहयोगी'	11
10	कविता	तृप्ति मिश्रा	11
11	कविता	सत्यशील राम त्रिपाठी	11
12	एंटी वाइरस (लघुकथा)	विभा रश्मि	12
13	कविता	अशोक तिवारी	12
14	देव दीपावली : देवताओं का पर्व	आकांक्षा यादव	13-15
15	उपाय (लघुकथा)	डॉ. विजय कुमार सिंघल	16
16	मोबाइल (लघुकथा)	मिन्नी मिश्रा	16
17	निर्माता (लघुकथा)	विभा रश्मि	16
18	सभ्य बाल विकास में बाल साहित्य की भूमिका	कृष्ण कुमार यादव	17-20
19	कविता	व्यग्र पाण्डे	21
20	कविता	सूर्य प्रकाश मिश्र	21
21	वादा (लघुकथा)	सविता मिश्रा 'अक्षजा'	21
22	सरस विधा (कहानी)	कृष्ण मनु	22-29
23	आज महसूस होती कबीर की अनुपस्थिति	राजेंद्र सिंह	30-31
24	दान (कहानी)	यशपाल सिंह यश	31-34
25	इतवार की नींद	दीपक कुमार	33-34
26	मोनू (कहानी)	डॉ नीता समद्दार	35-37
27	कतार (कहानी)	इन्दु सिन्हा 'इन्दु'	38-39
28	छपास की भूख और हम	सिद्धेश्वर	40-42

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092

आस्तीन की साँप

कहानी

रमेश मनोहरा

"देख सुगन्धा तेरे बारे में जो सुना है क्या वो सच है?" आखिर मीना बहुत देर बाद मौन तोड़ती हुई बोली.

"क्या सुना है मीना तुने?" सुगन्धा ने प्रश्न पूछा

"सुना है तुम्हारे पवन से संबंध है."

"यह बात किसने कही." नाराज होकर सुगन्धा बोली– किससे सुना है तुने.

"मैंने भी सुना है, ये किसने कहा मुझे नहीं मालूम?"

"अरे जिसने भी यह बात कहीं जिस दिन पता चल गया न उस औरत की चोटी पकड़कर घसीटती हुई चौराहे पर ले जाऊँगी और उसे नंगा करूँगी." नाराज होती हुई सुगन्धा बोली– बता मीना, ये झूठी बात किसने कहीं.

"अब छोड़ो भी, देर सबेर पता चल ही जायेगा." इंकार करती मीना बोली.

"बता दे किसने कहीं ये बात? उसकी मुंडी निचोड़ दूंगी. कैसे कह दिया?" नाराज होकर सुगन्धा बोली– सच–सच बता दे मीना, किसके मुँह से सुनी ये बात.

"अब गुस्सा मत कर सुगन्धा, किस–

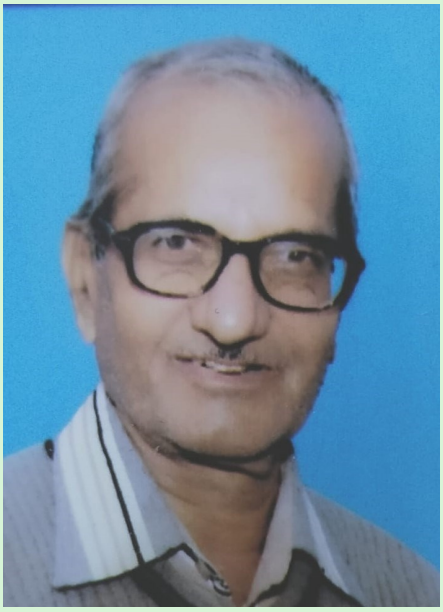

किस से लड़ती रहेगी." समझाती हुई मीना बोली. सुना है तू अपने बड़े बेटे के यहाँ जा रही है.

"अब बात को मत पलट मीना." फिर सुगन्धा नाराजी से बोली– यह कहकर तो तूने मेरे भीतर आग लगा दी है.

"अरे छोड़ो न बाबा." फिर इंकार करती हुई मीना बोली– तू अकेली रहती है. तब लोगों के मन में कई शंकाए जन्म लेती रहती है.

"अरे मैं अकेली रहती हूँ तो उनके पेट में क्यों दर्द उठ रहा है." उसी गुस्से से फिर सुगन्धा बोली. फिर आगे बोली– मेरा अकेला रहना भी हरामजादों को अखर रहा है. जिस दिन मुझे पता चल जायेगा न उसका मुँह नोच लूंगी. तू भी मीना बता नहीं रही है. उसका नाम कौन हरामजदी है वो. जिस दिन मुझे पता.....अभी सुगन्धा की बात पूरी भी नहीं हो पाई. मीना का मोबाइल बज उठा. थोड़ी देर वह बातचीत करती रही, बात करने के बाद यह कहकर घर चली गई कि घर में बुलाया है.

50 वर्षीय सुगन्धा यहाँ अकेली रहती है. उसके पति गंगाराम शासकीय हाई स्कूल में उच्च श्रेणी शिक्षक थे. दस वर्ष पहले कक्षा में पढ़ाते–पढ़ाते ऐसा दिल को दौरा पड़ा कि अस्पताल ले जाने के पहले ही उनका प्राणान्त हो

गया. तब से सुगन्धा विधवा है. गंगाराम ने मृत्यु के पूर्व लड़की और लड़के की शादी कर गृहस्थी के भार से मुक्त हो चुके थे. उनका लड़का प्रायवेट सेक्टर में नौकरी करता था. अतः शासन के नियमानुसार लड़के को अनुकम्पा नियुक्ति बाबू के पद पर मिल गई. मगर घर से लगभग 100 किलोमीटर दूर दफ्तर में नौकरी मिली. अतः वह अपनी पत्नी को लेकर वही रहने चला गया. कभी–कभी आ जाता है. सुगन्धा को पेंशन मिलती है. थोड़ा बहुत मेहरी का काम करती है. कभी–कभी बेटे के पास चली जाती है. मगर वहाँ अधिक देर तक नहीं रहती है. क्योंकि उसकी बहू से नहीं बनती है. इसलिए वो वहाँ मजबूरी वश ही जाती है. उसका घर इस तरह से गंगाराम बनाकर गये थे कि घर के बीच में गलियारा था. पीछे खुला वाड़ा था. आगे तो सड़क थी. अतः मकान का एक हिस्सा किराये से दे रखा था. दूसरे हिस्से में वो स्वयं रहती थी.

मीना उसके ही पड़ोस में रहती है. अतः दोनों में प्रेम व अपनत्व है. जब भी फुर्सत मिलती एक दूसरे के घर बैठकर ज़माने भर की बातें किया करती थी. अतः कभी भी मन में खटास नहीं आया. समय आने पर एक दूसरे की मदद भी करती थी. मगर आज मीना ने उस पर आरोप लगाया. पवन से तुम्हारा संबंध है. उस समय वह स्वयं महाकाली बन गई. यह बात तो मीना ने कहीं, इसलिए जब्त कर लिया. मीना के अलावा यही बात अन्य औरत कहती तब उसकी चोटी पकड़कर चौराहे पर पीटती. मगर मीना उसकी खास सहेली थी. अतः उस पर शक कर नहीं सकती थी. मगर उसने किसके मुँह से यह बात सुनी. यह भी तो नहीं बता गई. फिर किसने यह अफवाह उड़ाई, निश्चित ही किसी ने तो शरारत की होगी. मगर पहली बार तो मीना के मुँह से सुनी यह बात.

अब से पवन कौन है?.....उसके यहाँ किरायेदार है. अकेले रहते है, कालेज के प्रोफेसर है. उनका परिवार पत्नी और बच्चें उज्जैन में रहते है. वहाँ उनके दोनों बच्चें इंजीनियर कालेज

में पढ़ रहे है. अतः वे अकेले रहते है . देर सवेर स्थानान्तर उज्जैन में करवा लेंगे. मगर इसी प्रतीक्षा में तीन साल निकाल दिये. वे उसके हम उम्र थे. अतः किराये पर रख लिया. उसे तो किराये से मतलब था. जब भी पवनजी को फुर्सत होती. वे घंटो बातें करते थे. उनके विचार आपस में मिलते थे. हँसकर बातें कर लेना लोगों ने उनका संबंध जोड़ लिया. जबकि पवन ने आज तक कभी छुआ भी नहीं, नहीं कोई एसी हरकत की जो आँच आये फिर किसने ये अफवाह उड़ाई. उन दोनों के बीच तो मालिक और किरायेदार का संबंध है. दोनों की नज़रे पाक साफ है. मगर धीरे–ध ीरे यह बात पूरे मुहल्ले में फैल गई.

इस बात को कई दिन बित गये, इस संबंध में उसने मुहल्लें की कितनी औरतों से पूछ–ताछ की, मगर सभी ने यही कहाँ, हमने केवल सुना है. यह गैर जिम्मेदारी बात किसने फैलाई. शक की सुई किसी पर आकर नहीं रूकी?.....फिर मीना ने ही ये बात क्यों कही? पहली बार तो उसने मीना के मुँह से ही सुना था. एकदिन जब वह मीना के घर गई. दरवाजा बंद था. मगर अन्दर कुछ महिलाओं की खुसुर–खुसर की आवाजें स्पष्ट सुनाई दे रही थी. वह कान लगाकर सुनने लगी. एक महिला कह रही थी कि– सुगन्धा के बारे में यह मैं क्या सुन रही हूँ.

"क्या सुन रही हो?" यह आवाज मीना की थी.

"उसका उसके किरायेदार से संबंध है?"

"हाँ बहिन यह बात तो मैंने भी सुनी है." किसी अन्य महिला ने कहाँ– मगर पराये आदमी से एक विधवा को संबंध नहीं बनाना चाहिए.

"देखो न वो सुगन्धा उस प्रोफेसर से कितनी हँस–हँस के बातें करती है. और वो प्राफेसर भी तो....."

"प्रोफेसर को छोड़ो बहिन." बीच में ही बात काटती हुई अन्य महिला बोली– उस सुगन्धा ने छूट दी होगी. बेशरम कहीं की कैसे हँस–हँस के बात करती है. यहाँ अकेली रहती है बेटे के पास क्यों न चली जाती है?

"किस नाक से जाए, बहू से लड़ती है . इसलिए अकेली रहती है. यहाँ." यह आवाज मीना की थी. आगे क्षणभर रूककर बोली– यह अफवाह किसने फैलाई है, जानते हो?

"किसने फैलाई मीना बहिन." किसी महिला ने पूछा.

"मैंने फैलाई थी?" यह मीना का उत्तर था

"मगर तुमने क्यों फैलाई मीना, जबकि

सुगन्धा से तेरा तो बहुत अच्छा संबंध था. ऐसा क्यों किया?" किसी महिला ने जब यह पूछा तब मीना ने जवाब दिया– उस प्रोफेसर से उसने बहुत ज्यादा संबंध बना रखे है. घंटो बातें करते देखा है. बेशर्म जैसी बैठ जाती थी उसके पास..एक औरत को अपनी मर्यादा में रहना चाहिए. मगर वह मर्यादा नहीं थी उसमें आगे सुगन्धा कुछ न सुन सकी. चुपचाप अपना मुँह लेकर अपने घर आकर दरवाजा बंद कर सौफे पर पसर गई. उन महिलाओं की बातें जो उसने सुनी थी . उसके बारे में कितने नीच विचार है उनके उसका किसी पुरूष से हँसकर बात कर लेना इन रूढ़िग्रस्त महिलाओं को नागवार गुजरा. जबकि वो अपनी निगाह में पाक है. मगर इन महिलाओं को कौन समझाए. ये सारी आग उस मीना ने लगाई है, खुद तो पवनजी को भाई साहब.....भाई साहब कहती थी. मगर इसी छिनाल ने ज़हर घोला. कैसी आस्तीन की साँप निकली.सारी अफवाह उसी ने फैलाई. मतलब अब मीना से संबंध नहीं रखना. नासपीटी पवनजी से हँस लेती थी तो संबंध जोड़ के अफवाह फैला दी. पूरे मुहल्ले में बदनाम कर दिया.

मगर इन औरतों का कैसे मुँह बंद करें. कैसे विषभरे विचार रखती है उसके बारे में. ये सब उसे घृणा की दृष्टि से देख रही है. जिस औरत से वो बात करती है, उसे घृणा की दृष्टि से देखती है. मतलब अब उसे पवनजी से संबंध तोड़ लेना चाहिए. यदि नहीं तोड़ेगी तब ये मीना उसके खिलाफ और ज़हर उगलती रहेंगी. कब तक वो मुहल्ले की महिलाओं का अपमान सहती रहेगी. तभी पवन ने आकर कहॉ– क्या सोच रही हो सुगन्धा जी?.....बहुत चिंतित लग रही है आज?

"क्या करूँ पवनजी, आपसे मैं हँस–हँसकर बातें क्या कर लेती हूँ कि इन मोहल्ले की औरतों ने हमारे बीच संबंध जोड़कर बदनाम कर रहे है." उदास होकर सुगन्धा ने यह बात कहीं तब पवन बोले– इतनी सी बात पर आप उदास रहने लगी.

"अरे पवनजी आप तो मरद ठहरे ऐसे मामले में मरना तो औरत को ही पड़ता है." समझाती हुई सुगन्धा बोली– अतः मैंने सोच–समझकर फैसला लिया है कि आप यह मकान खाली करके किसी अन्य मुहल्ले या कालोनी में ले लेवे. ताकि इस मुहल्ले की औरतों की छाती की आग ठंडी पड़ जावे.

"देखिए सुगन्धा जी, आपके और हमारे संबंधों को लेकर जो अफवाह मुहल्ले में उड़ रही है. उसकी भनक मेरे कानों में भी पड़ चुकी है. अतः मैंने प्रभात कालोनी में किराये से मकान ले लिया है. एक दो दिन में चला जाऊँगा." कहकर पवन अपने कमरे में चले गये. सुगन्धा ने राहत की सांस ली. चलो पवनजी, खुद ही जा रहे है. कितने सुलझे हुए विचार के है वे, जब पवनजी चले जायेंगे न इन सबकी छाती ठंडी पड़ जायेगी मगर इन औरतों के प्रति उसे जो नफरत हुई है. वह तो मिटेगी नहीं. विशषकर मीना के प्रति नफरत रहेगी.

दूसरे दिन पवन जी का सामान ट्रक में रखा जा रहा था. मीना यह सब देख रही थी. जब ट्रक रवाना हो गया. तब पास आती हुई मीना बोली– अरे सुगन्धा ये पवनजी कहाँ चले गये?

"अरे अस्तीन की साँप किस मुँह से बात कर रही है." नागिन की तरह फुंकारती हुई सुगन्धा बोली– पवन जी के जाने से अब तो तेरी छाती ठंडी पड़ गई होगी. नासपीटी आज से तेरा मेरा संबंध खतम हुआ. अब कभी बात मत करना मुझसे.....क्या देख रही है मुझे, जा रही है कि

धक्के मार के निकालूँ.

आगे के शब्द मीना नहीं सुन सकी. चुपचाप मुँह लटकाके बिना जवाब दिये चली गई. जाते–जाते सुगन्धा ने इतना फिर कहाँ– आस्तीन की साँप कहीं की.

रमेश मनोहरा 9479662215

सपने सच होंगे...

हिम्मत रख कर बढ़ते जाएँ,
तय है, मंजिल पाएँगे,
पर कर्मक्षेत्र में श्रम करने से,
यदि पीछे हट जाएँगे।
यदि सोचेंगे, कार्य कठिन है,
हमसे नहीं हो पाएगा,
नई पहचान दर्ज कराने से,
हम वंचित रह जाएँगे।।

मन में हो आशा, न तनिक निराशा,
जीत हमारी तय,
सत्पथ पर सतत सद्कर्म की,
टूटने न देंगे हम लय।
विजय पथ पर होकर सवार,
हम आगे बढ़ते जाएँगे,
भले हो उबड़-खाबड़ रास्ते,
कदापि लगेगा न भय।।

कदम-कदम अवरोध मिलेंगे,
हमें आगे बढ़ते जाना है,
पग-पग में कंटक आए,
हमें फूलों जैसा मुस्काना है।
इतिहास बनाने के सपनें देखें,
श्रम से वे होंगे साकार,
सपनों को सच करके,
इस जमाने को दिखलाना है।।

मंजिल को पाने में, धैर्य और
साहस रखना पड़ता है,
पहाड़ जैसे पथरीले व दुर्गम
पथ पर चढ़ना पड़ता है।
कभी न हिम्मत हारे हम,
बस! आगे ही यूँ बढ़ते जाएँ,
सपनों को सच करने में,
बहुत कुछ सहना पड़ता है।।

हमें सफलता न मिले, लोग
पथ में पत्थर रख जाएँगे,
असफलता की कई कहानी,
नित कुछ लोग सुनाएँगे।
हमें मस्त मगन होकर, अपने
कर्म को करते रहना है,
जब विजयश्री का हम वरण करेंगे,
लोग गले लगाएँगे।।

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव 7355309428

मोहन राजेश

लघुकथा

घंटी बजते ही वे चौंक उठे। लॉकडाउन के इस दौर में किसी का भी आगमन उनकी दृष्टि में यमराज की प्रविष्टि ही थी।

उन्हें आराम कुर्सी पर हिलता देख पत्नी ने कुछ क्षण उनके उठने की प्रतीक्षा की और उन्हें रिस्क लेने के मूड में न देख गैस की लौ कम करते हुए बोली --"मैं ही देखती हूं कौन है ?"

"हां, पर मास्क लगाकर जाना और ध्यान रखना एक मीटर दूर से ही ...."कुर्सी पर झूलते हुए उन्होंने हिदायत दी। पत्नी बिना कुछ बोले , मुंह पर मास्क चढ़ाती हुई, गेट की ओर चल दी।

उन्होंने कमरे के दरवाजे की सिटकनी खुलने और उसके बाद मेन गेट खुलने की ध्वनियां सुनी और द्वार की और कान लगा कर बैठ गए किंतु उन्हें कुछ सुनाई नहीं दिया। मोबाइल पर आती फिल्म को पॉज किया और मोबाइल को टेबल पर रख कर कुर्सी से उठ ही रहे थे कि पत्नी सामने आ गई और बिना पूछे ही बोली-- "बाई आई है।"

"कौन सावित्तरी ? अभी क्यों आई ? उसे मना किया था न कि जब तक कोरोना का खतरा खत्म नहीं हो जाता तब तक यहां न आए।" --उन्होंने भौंहें चढ़ाते हुए कहा।

"अपनी पगार लेने आई है " -- पत्नी ने तिक्त स्वर में कहा-- "पिछले महीने आपने दिए थे क्या ?"

पत्नी के स्वर की तिक्तता उनकी दृष्टि में स्वाभाविक थी क्योंकि कामवाली बाई की अनुपस्थिति में घर के सारे काम..... "सोच क्या रहे हैं पैसे दीजिए।"-- पत्नी के रूक्ष स्वर ने उन्हें चैतन्य कर दिया कि विस्फोट होने वाला है फिर भी हिम्मत करके हौले से बोले --" उससे कहा क्यों नहीं कि अभी पैसे कहां है। क्या उसे पता नहीं है कि पिछले महीने से फैक्ट्री बंद है। पैसा कहां से...."

"आपके दारु पीने के लिए आ जाते हैं। हजार रुपए की बोतल ब्लैक में तीन हजार में भी खरीद लेते हो। फेसबुक पर प्रवासी मजदूरों के प्रति संवेदनाओं के भाषण झाड़ते रहते हो। दोस्तों से फोन पर ..." पत्नी भड़क उठी थी।

"अरे, चिल्ला क्यों रही हो, दे तो रहा हूं" "--उन्होंने जेब से पर्स निकालते हुए कहा--" "ये लो।"

"तीन हजार नहीं, उसे छह हजार रुपए देने हैं" --पत्नी ने तल्ख लहज़े में कहा-- " मैंने उससे इस महीने की तनख्वाह देने की भी हामी भरी है, नहीं तो वह लॉक डाउन के बाद आएगी ही नहीं, गांव चली जाएगी"

उन्होंने बेमन से पांच पांच सौ के बारह नोट दो बार गिन कर श्रीमती जी के हाथों में थमा दिए, उनके चेहरे का रंग उड़ चुका था। पत्नी ने उनका समाजवादी , समाजसेवी वाला मास्क जो नोंच डाला था।

**

मो.- 8079044302

शक्ति आ गे-

पीछे विशाल महासागर की उत्तांग लहरों का गर्जन और छोटी सी कश्ती में सवार मेरी अन्तरात्मा.ज़रा भी भय नहीं.जिसने जीवन रूपी भवसागर को पार कर लिया उसे यह काला सागर क्या डरा सकता था?

तभी एक अन्य कश्ती पर सवार सभी लोग अदृश्य हो गये केवल खेवनहार ही बचा था.जो मेरी अन्तरात्मा को अपनी ओर खींच रहा था.पर दोनों कश्तियों के बीच रेतीला सागर था जिसे पार करके ही उस कश्ती पर जाया जा सकता था.

रेत! धूल और अंधड!

अंतरात्मा ने इधर-उधर देखा.कोई विकल्प नहीं उस कश्ती तक पहुँचने का.वह अधीर थी वहाँ जाने को.अचानक उसे लगा वह बहुत हल्की हो गई है ऊँची छलाँग लगाने को.

बस, ज़रा सा ज़ोर लगाया और वह हवा में उछल गई. एक क्षण लगा और वह परमात्मा रूपी खेवनहार की कश्ती पर पहुँच गई.

अंतत: जीवन भर की अनन्य भक्ति की शक्ति ने आत्मा को आवागमन के चक्र से मुक्ति दिला दी.

शील निगम

बड़ी नहीं होना चाहती

लघुकथा

"आज देव की छुट्टी थी इसलिए आराम से बैठ कर अखबार पढ़ रहा था। पत्नी रानी चाय बना कर लाती है उसी समय बाॅस का फोन आ जाता है।"

"लम्बी वार्ता होती है इसलिए देव चाय पीना भूल जाता है। तभी रानी आती है...कहती है - अरे आपकी चाय तो बिलकुल ठण्डी हो गई।"

"कोई बात नही मैं दूसरी बना के ले आती हूं...दोनों लोग साथ बैठकर चाय पिएंगे।"

"रानी दूसरी चाय बनाकर ले आती है। दोनो साथ में बैठकर चाय पी रहे होते है।देव बताता है - अभी बाॅस का फोन आया था। बेटी की शादी का निमंत्रण दिया है और कह रहे है सपरिवार आना है।दो चार दिन पहले आकर छोटे भाई की तरह सारी जिम्मेदारी संभालनी है।"

"देव लम्बी गहरी सांस लेते हुए कहता है कि कल को हमारी बेटी भी बड़ी हो जाएगी तो हमें भी उसे विदा करना पड़ेगा। कैसे रहेंगे हम उसके बगैर? मैं तो सोच के ही कांप जाता हूं।"

"ओह बड़े होने से याद आया - मैंने मिन्नी के लिए दूध निकाला था। किचेन मे ही रख के भूल गई।"

"मिन्नी....मिन्नी बिटिया चलो दूध पिलो।

नही मम्मा दूध पीने का मन नही है।"

"देव मिन्नी को गोद मे उठा लेता है।अरे मेरी रानी बिटिया दूध नही पियेगी तो फिर बड़ी कैसे होगी?"

"नही पापा मुझे बड़ा नही होना है।मै दूध नही पियूंगी"

"देव बिटिया को दुलारते हुए कहता है - मेरी बिटिया बड़ी नही होगी तो अपने मम्मा पापा का नाम कैसे रोशन करेगी?"

"पापा वो तो मैं छोटी रहकर भी आपका नाम रोशन कर सकती हूं।"

"देव हंसते हुए कहता है...वो कैसे?"

"मैं खूब...खूब...खूब पढ़ूंगी। और फस्ट आ जाऊंगी।"

"पर पापा मैं बड़ी नही होना चाहती।"

"लेकिन क्यों बच्चा? - मेरा बच्चा ऐसे क्यों कह रहा है?"

"पापा जब लड़कियां बड़ी हो जाती है तब लोग उनके बाल पकड़ कर उनको खूब मारते-पीटते है और उनके कपड़े भी फाड़ देते है।"

"नही बच्चा ऐसा नही होता।"

"ऐसा ही होता है पापा मैंने टीवी पर कई देखा है।"

"देव और रानी अपनी बेटी की बाते सुनकर आश्चर्य चकित हो जाते है। उन्हे समझ मे नही आ रहा अब अपनी फूल सी बच्ची को वह क्या जवाब दे???"

प्रियंका त्रिपाठी 'पांडेय'
प्रयागराज उत्तर प्रदेश
9120098559

गीतिका

ताज मिले या जेल फकीरा।
सब कर्मों का खेल फकीरा।

अहंकार के रथ पर चढ़कर
कब होता है मेल फकीरा।

सत्ताओं के संघर्षों में
निकले जन का तेल फकीरा।

सोच समझकर कदम बढ़ाना
दुनिया धक्कमपेल फकीरा।

राह चुनी गर खुद कांटों की
कष्टों को फिर झेल फकीरा।

जिनसे भी आगे निकलेगा
देंगे पीछे ठेल फकीरा।

करना है सो जल्दी कर ले
फिर छूटेगी रेल फकीरा।

डॉ० सत्यवीर 'मानव', नारनौल

हिंदी !

लघुकथा

आशा शैली

ऐसे भरे-पुरे घर को छोड़ रही हो। आखिर क्यों?? अरुण ने पूछा तो रुक्मणि ने हँसते हुए कहा, ''एक कहानी सुनो। यह कहानी जब विक्रम ने बेताल को कंधे पर डाला तो बेताल ने उसे सुनाई थी। एक नगर में एक किसान की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी और बेटों-बहुओं में सम्पत्ति को लेकर रोज झगड़ा रहने लगा। बेटे बहुएँ चाहते थे कि माँ पूरी सम्पत्ति दो भागों में बाँट दे परन्तु किसान की पत्नी ऐसा नहीं कर रही थी। तब एक दिन दोनों बेटों ने माँ को मार डालने की योजना बनाई और इसके लिए वे अवसर खोजने लगे। संयोग से उन दिनों उस नगर में बहने वाली गम्भीर नदी में सरकार ने दो मगरमच्छ छोड़े थे। बेटों ने अपने ट्रक के चालक से मिलकर योजना बनाई कि एक सप्ताह बाद जब वे फसल से भरा ट्रक मण्डी को भेजेंगे उसी समय माँ को गला घोंटकर बोरे में भर देंगे और चालक बोरा नदी में फेंक देगा। पर चालक इस बात पर सहमत ही नहीं हो रहा था। यह भी संयोग ही था कि जब रात को वे तीनों मंत्रणा कर रहे थे तो माँ उस तरफ जा निकली और उसने बात सुन ली पर अधूरी, निर्णय क्या निकला पता नहीं। पर्याप्त समय था उसके पास, उसने सारे जेवर और जमीन के कागज़ समेटे और घर छोड़ दिया।

इतना कहकर बेताल ने पूछा, अब बताओ राजा क्या उस किसान की स्त्री ने गलत किया?''

अरुण आश्चर्य से बहन का मुख देख रहा था। रुक्मणि के मुख पर एक तीखी मुस्कान थी।

आशा शैली

हिंदी सिर्फ राजभाषा व संपर्क भाषा नहीं, ज्ञान भाषा के रूप में हो रही विकसित - प्रो सत्यपाल शर्मा

संचार-क्रांति, सूचना-प्रौद्योगिकी और नवाचार की भाषा के रूप में हिंदी रच रही नए आयाम
- पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव

हिन्दी सिर्फ साहित्य ही नहीं बल्कि विज्ञान से लेकर संचार-क्रांति, सूचना-प्रौद्योगिकी और नवाचार की भाषा भी है। हिंदी हमारी मातृभाषा के साथ-साथ राजभाषा भी है, ऐसे में इसके विकास के लिए जरुरी है कि हम हिंदी भाषा को व्यवहारिक क्रियाकलापों के साथ-साथ राजकीय कार्य में भी प्राथमिकता दें। सृजन एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिंदी दुनिया की अग्रणी भाषाओं में से एक है। हिन्दी अपनी सरलता, सुबोधता, वैज्ञानिकता के कारण ही आज विश्व में दूसरी सबसे बड़ी बोली जाने वाली भाषा है। क्षेत्रीय डाक कार्यालय, वाराणसी में आयोजित हिंदी पखवाड़ा समापन (16 सितंबर-30 सितंबर) समारोह की अध्यक्षता करते हुए उक्त उद्गार वाराणसी परिक्षेत्र के पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने व्यक्त किये। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में प्रोफ़ेसर सत्यपाल शर्मा और कवि श्री दान बहादुर सिंह संग उन्होंने पखवाड़ा के दौरान आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों के विजेताओं को सम्मानित भी किया। बतौर मुख्य अतिथि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्रोफ़ेसर सत्यपाल शर्मा ने कहा कि भारत के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी ने संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में राष्ट्रीय एकता की निर्मिति में ऐतिहासिक योगदान दिया। आजादी के बाद संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। राजभाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए गए हैं। बदलते समय की चुनौतियों के अनुरूप राजभाषा, संपर्क भाषा और महत्वपूर्ण ज्ञानभाषा बने रहने के लिए हिंदी को तकनीकी रूप से और समृद्ध बनना होगा। हिंदी की सबसे बड़ी ताकत उसके बोलने वालों की बड़ी संख्या है। लोकभाषा और जनभाषा के रूप में हिंदी भारतीय समाज के बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व हजारों वर्षों से करती रही है। हिंदी का विरोध ज्ञानभाषा अंग्रेजी से नहीं बल्कि राजभाषा अंग्रेजी से है। सहायक निदेशक राजभाषा श्री बृजेश शर्मा ने बताया कि डाक विभाग की ओर से हिंदी पखवाड़े में कई प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें सभी कर्मचारियों, अधिकारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया और हिन्दी पखवाड़े को सफल बनाने में अपना योगदान दिया। इस अवसर पर कवि श्री दान बहादुर सिंह ने अपनी कविताओं से शमां बांधा और लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस अवसर पर निबंध प्रतियोगिता में अभिलाषा राजन, रामचंद्र यादव, अजिता कुमारी, हिंदी टिप्पण एवं आलेखन प्रतियोगिता में शशिकांत वर्मा, राहुल कुमार वर्मा, राकेश कुमार, हिन्दी अनुवाद एवं शब्द ज्ञान प्रतियोगिता में शम्भू प्रसाद गुप्ता, श्रीप्रकाश गुप्ता, मनीष कुमार, हिंदी व्याकरण ज्ञान प्रतियोगिता में रामचंद्र यादव, राहुल कुमार वर्मा, अभिलाषा राजन, हिन्दी टंकण प्रतियोगिता में राकेश कुमार,अजिता कुमारी, मनीष कुमार एवं हिन्दी श्रुत लेखन प्रतियोगिता में प्रशांत पाण्डेय, अखिलेश मौर्य, इन्द्रजीत गौतम को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार से पोस्टमास्टर जनरल और मुख्य अतिथि द्वारा सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में अधीक्षक डाकघर पी.सी तिवारी, वरिष्ठ लेखाधिकारी एम.पी वर्मा, सहायक अधीक्षक अजय कुमार, सहायक लेखा अधिकारी संतोषी राय, डाक निरीक्षक श्रीकांत पाल, वीएन द्विवेदी, राजेन्द्र यादव, श्रीप्रकाश गुप्ता सहित तमाम विभागीय अधिकारी-कर्मचारी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन सहायक अधीक्षक अजय कुमार ने किया

ब्रजेश शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा), कार्यालय - पोस्टमास्टर जनरल। वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी - 221002

अजी ! चुपचाप रहिए

लिख रही है आज कविता,
लिपि,
अजी ! चुपचाप रहिए|

छंद के उजले शहर में
भाव आते हैं,
सो रही अनुभूतियों को
आ जगाते हैं,
सज रही है अक्षरों से,
कृति,
अजी ! चुपचाप रहिए|

वर्ण के संसाधनों से
शब्द छंदित हैं,
वास्तविकता के अलंकृत
अब्द रंजित हैं,
नाचता है व्यंजना का,
शिखि,
अजी ! चुपचाप रहिए|

गुनगुनाहट की गली से
लय निकलती है,
साँझ-वन से साधना की
जय निकलती है,
क्षितिज पर लेटी हुई है,
क्षिति,
अजी ! चुपचाप रहिए|

अभी उपसंहार के हर
लघु कहन के पल,
ढूँढ़ते हर समस्या का
भव्य सक्षम हल,
बंद अंतिम रच रही है,
इति,
अजी ! चुपचाप रहिए|

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी'

तृप्ति मिश्रा

राम सीता विवाह प्रसंग

दौड़ती भागती आईं सखी
दुलहिन को संदेस दिया
करो अब और विलंब नही
द्वार खड़े तेरे राम सिया

देखने दूल्हे राजा को
संग बाराती बाजा को
लिए हाथ अक्षत औ फूल
झरोखें पर हैं आईं सिया

तभी अंदर दासी आई
पंडित ने कन्या बुलवाई
साथ श्रुतकीर्ति और मांडवी
उर्मिला के संग जाएं सिया

बंधनवार सजे मंडप में
चार भांवरें सजी हुई
हौले हौले सकुचाती सी
एक में चलकर आईं सिया

रामचंद्र के मोर बंधा
अद्भुत छटा निराली थी
एक झलक देखन राजा की
मन ही मन हिरसाईं सिया

हो अधीर ले हृदय हिलोर
बैठे दूल्हा बन के आज
राजा राम भी कनखी देखें
कुछ तो छवि दिख जाएं सिया

पहनी हाथ जो आरसी
देखे लुक छिप रामलला
उसी आरसी के दर्पण में
राम को दिख जाएं सिया

झनक झनक चमकी आरसी
झलक झलक देखें एक दूजे
नैन मिले ज्यों रामचंद्र से
घूंघट में हैं लजाईं सिया

सही राह पर चलते रहना
हार मिले या जीत
कठिन समय में गाते रहना
मेरे मन का गीत

लिख-लिख कर जो भर डाले हैं
गीतों की डायरियाँ
उनमें गंध, पाँखुरी उनमें,
उनमें रहतीं परियाँ

ये परियाँ, पाँखुरी ठीक कर
देतीं मन का मौसम
खुशियों के पन्ने ढँक लेते हैं
दिल के सारे ग़म
गीत सुनाते-सुनते दुख के
पल जाते हैं बीत

ढूँढ़ोगे तो पाओगे
गीतों में जीवन-दर्शन
कहीं सुदर्शन-चक्र मिलेगा
कहीं रास का नर्तन
जीवन के साँपों से घिरकर
महकेगा मन-चंदन
आएगा तो निश्चित ही
गीतों से ही परिवर्तन
इसीलिए हम सबको देते
गीतों के नवनीत

हमने हर्ष-विषाद झेलकर
गढ़ी गीत की सीढ़ी
इसको पढ़कर मुस्काएगी
एक साथ दस पीढ़ी
रहे फकीरी में टांगे हम
जो गीतों का बस्ता
इक दिन जग को दे जाएंगे
गीतों का गुलदस्ता
पढ़-सुनकर खुशियों में वृद्धि
होगी आशातीत

सही राह पर चलते रहना
हार मिले या जीत
कठिन समय में गाते रहना
मेरे मन का गीत

सत्यशील राम त्रिपाठी, गोरखपुर

लघुकथा : विभा रश्मि

एंटी वायरस

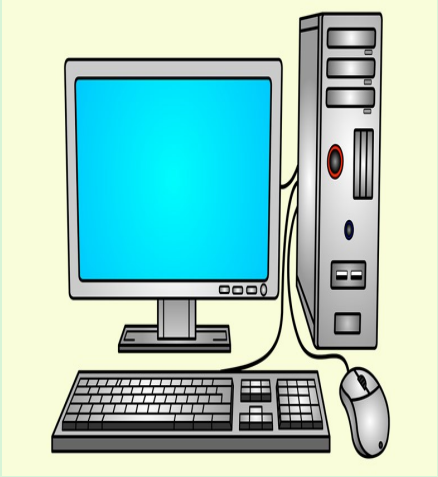

"मैम आपको स्टेशन तक छोड़ दूँ ?" वो अपनी पसंदीदा कॅलीग से बोला।

" मैम ! रोज़ छोड़ता हूँ , आदत सी हो गई है , मुझे परेशानी नहीं होती । आपकी लोकल जाने के बाद , मैं पैदल रूम पर निकल जाऊँगा।"

"नहीं ,आज रहने दो , खुद ही चली जाऊँगी । आज कंम्प्यूटर में वायरस आ गया था। बड़ी मुश्किल से डाटा सेव कर पाई। कल वाला वक्त ही हो गया ऑफ़िस से निकलते ।"

" हम काफ़ी कब पीएँगे मैम ?"

" देखेंगे जब रिलैक्स्ड होंगे।"

" सिक्स मंथ हो गये इस कंपनी में । नौकरी अच्छी है और पैकेज भी हैंडसम है क्यों ?" लोकल स्टेशन से पहले दोनों गेट पर ही रुक गये ।

"मेरे यहाँ चलें कभी , निकट हीं है मेरा ग़रीबखाना मैम !"

"फिर कभी।" उसने टाल दिया।

" वैसे अब मुझे डर नहीं लगता तुमसे।" वे कभी उसे, कभी झुकी नज़रों से ...

याद बहुत आती है कच्ची बखरी अपने गांव की

वह दालान, जहां छिप छिपकर,छुपा छुपाई खेली थी,
भिनसारे में चक्की की धुन सचमुच ही अलबेली थी।
आंगन लिपा हुआ गोबर से, कितना शीतल होता था,
जिसके कोने कोने में फैला ममता का सोता था।
आज फ्लेट की कृत्रिम हवा में,अब भी सुधि आ जाती है,
गरम हवा को ठंडा करती,उस निबिया की छांव की।
याद बहुत आती है कच्ची बखरी अपने गांव की।।

पेड़ों पर चढ़ना ,गिरना फिर चढ़ना याद अभी भी है,
बात बात में भाई बहन से लड़ना याद अभी भी है।
खेतों में घुस कर मीठे गन्ने खाना मामूली था,
मिट्टी में गिर कर घुटनों का छिल जाना मामूली था।
पक्के घर में कच्चे रिश्ते देख याद आ जाती है,
हक़ से घर में घुस बैठी काली कुतिया की ठांव की।
याद बहुत आती है कच्ची बखरी अपने गांव की।।

सांझ ढले आंगन का चूल्हा रोज दहकता याद मुझे,
दाल उड़द की,आलू टोपीदार महकता, याद मुझे।
पापा का कुंडी खटका कर, घर में आना याद मुझे,
बहुओं का जल्दी जल्दी घूंघट सरकाना याद मुझे।
आज शहर की नई सभ्यता देख याद मुझको आती,
अपनी ही आहट से डरते,नई बहू के पांव की।
याद बहुत आती है कच्ची बखरी अपने गांव की।।

दादी का अनुशासन घर में सबको बांधे रखता था,
मर्यादा का पालन संबंधों को साधे रखता था।
चाची के भीतर थी अम्मा, अम्मा में चाची का मन ,
हंसी खुशी की कमी नहीं थी, असली धन था अपनापन।
आज डूबते संबंधों की तलछट याद दिलाती है,
बरसाती जल में इठलाती,उस कागज की नाव की।
याद बहुत आती है कच्ची बखरी अपने गांव की।।

अशोक तिवारी

देव दीपावली : देवताओं का पर्व

मानव जीवन में प्रकाश की महत्ता किसी से छुपी नहीं है। दुनिया के कई देशों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाश-पर्व मनाये जाते हैं। अंधकार पर प्रकाश की विजय का यह पर्व समाज में उल्लास, भाई-चारे व प्रेम का संदेश फैलाता है। भारतवर्ष में मनाए जाने वाले सभी त्यौहारों में दीपावली का सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। इसे दीपोत्सव भी कहते हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् 'अंधेरे से ज्योति अर्थात प्रकाश की ओर जाइए' यह भारतीय संस्कृति का मूल है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में दीवाली मनाने के कारण एवं तरीके अलग हैं पर सभी जगह कई पीढ़ियों से यह त्योहार चला आ रहा है। यह पर्व सामूहिक व व्यक्तिगत दोनों तरह से मनाए जाने वाला ऐसा विशिष्ट पर्व है जो धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक विशिष्टता रखता है।

हर वर्ष कार्तिक अमावस्या तिथि पर दीपावली का त्योहार मनाया जाता है और इसके 15 दिनों के बाद कार्तिक पूर्णिमा तिथि पर देव दीपावली का उत्सव मनाया जाता है। दीपावली तो केवल नश्वर लोगों के लिए है; देव दीपावली देवताओं का पर्व है। हिंदू धर्म में पूर्णिमा का विशेष स्थान होता है और इनमें कार्तिक माह में आने वाली पूर्णिमा का तो विशेष महत्व है। ऐसी मान्यता है कि कार्तिक पूर्णिमा के दिन देवी-देवता पृथ्वी पर आकर दीपावली मनाते हैं। इस मौके पर गंगा घाटों को सजाया जाता है और खूबसूरत रंगोली व लाखों दीये जलाकर इस त्योहार को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। धार्मिक ग्रंथों की मानें तो देव दीपावली के दिन गंगा नदी में स्नान ध्यान करने से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

देव दीपावली मनाने के पीछे मान्यता है कि एक समय में तीनों लोकों में त्रिपुरासुर नामक राक्षस का राज चलता था। उसके अत्याचार से पीड़ित देवतागणों ने भगवान शिव के समक्ष त्रिपुरासुर राक्षस से उद्धार की विनती की। भगवान शिव ने कार्तिक पूर्णिमा के दिन उस राक्षस का वध कर उसके अत्याचारों से सभी को मुक्त कराया और त्रिपुरारी कहलाये। इससे प्रसन्न देवताओं ने स्वर्ग लोक में दीप जलाकर दीपोत्सव मनाया था, तभी से कार्तिक पूर्णिमा को देव दीपावली मनायी जाने लगी।

देव दीपावली मुख्य रूप से काशी में गंगा नदी के तट पर मनाई जाती है। इस दिन काशी

नगरी में एक अलग ही उल्लास देखने को मिलता है। हर ओर साज-सज्जा की जाती है और गंगा घाट पर हर ओर मिट्टी के दीपक प्रज्वलित किए जाते हैं। उस समय गंगा घाट का दृश्य भाव विभोर कर देने वाला होता है। लोकाचार की परंपरा होने के कारण वाराणसी में इस दिन गंगा किनारे बड़े स्तर पर दीपदान किया जाता है। देश-विदेश से तमाम श्रद्धालु और पर्यटक इसमें शामिल होने और इसका साक्षी बनने के लिए पहुँचते हैं। विभिन्न घाटों विशेषकर दशाश्वमेघ घाट पर पर इस दिन भव्य गंगा आरती देखते ही बनती है।

वाराणसी या बनारस (जिसे काशी के नाम से भी जाना जाता है) दुनिया के सबसे पुराने जीवित शहरों में से एक है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, काशी नगरी की स्थापना भगवान शिव ने लगभग 5,000 वर्ष पूर्व की थी। काशी की भूमि सदियों से एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। ये हिन्दुओं की पवित्र सप्तपुरियों में से एक है। प्राचीनतम वेद ऋग्वेद से लेकर स्कंद पुराण, रामायण एवं महाभारत सहित कई ग्रन्थों में इस नगर का उल्लेख आता है। बनारस की भूमि सदियों से एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। अंग्रेजी साहित्य के लेखक मार्क ट्वेन, जो बनारस की किंवदंती और पवित्रता से रोमांचित थे, ने एक बार लिखा था: "बनारस इतिहास से भी पुराना है, परंपरा से पुराना है, किंवदंती से भी पुराना है और सभी के साथ दोगुना दिखता है।"

वाराणसी अपनी प्राचीन विरासत के साथ-साथ अध्यात्म, साहित्य, संस्कृति, कला और उत्सवों के लिए भी जाना जाता है। ज्ञान, दर्शन, संस्कृति, देवताओं के प्रति समर्पण, भारतीय कला और शिल्प यहाँ सदियों से फले-फूले हैं। भारत की पवित्र नदी गंगा भी यहाँ से प्रवाहित होती है, जिसके किनारे घाटों पर दीप प्रज्वलन एवं दीप दान करके लोग आलोकित होते हैं। दीपावली के 15 दिन बाद वाराणसी में गंगा घाटों पर 'देव दीपावली' मनाने की परंपरा रही है। ऐसी मान्यता है कि कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन देवतागण स्वर्गलोक से उतरकर दीपदान करने पृथ्वी पर आते हैं, इसलिए इस दिन को देव दीपावली के नाम से भी जाना जाता है। देवताओं के साथ इस उत्सव में परस्पर सहभागी होते हैं- काशी, काशी के घाट, काशी के लोग। देवताओं का उत्सव देव दीपावली, जिसे काशीवासियों ने सामाजिक सहयोग से महोत्सव में परिवर्तित कर विश्वप्रसिद्ध कर दिया।

काशी में देव दीपावली उत्सव मनाये जाने के सम्बन्ध में मान्यता है कि राजा दिवोदास ने अपने राज्य काशी में देवताओं के

प्रवेश को प्रतिबन्धित कर दिया था। ऐसे में कार्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान शिव ने रूप बदल कर काशी के पंचगंगा घाट पर आकर गंगा स्नान कर ध्यान किया। यह बात जब राजा दिवोदास को पता चला तो उन्होंने देवताओं के प्रवेश प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया। इस दिन सभी देवताओं ने काशी में प्रवेश कर दीप जलाकर दीपावली मनाई थी। एक अन्य मान्यतानुसार, देव उठनी एकादशी पर भगवान विष्णु चातुर्मास की निद्रा से जागते हैं और चतुर्दशी को भगवान शिव। इसी खुशी में देवी-देवता काशी में आकर घाटों पर दीप जलाते हैं और खुशियाँ मनाते हैं। इस उपलक्ष्य में काशी में विशेष आरती का आयोजन किया जाता है। काशी में देव दीपावली का वर्तमान स्वरूप पहले नहीं था। पहले लोग कार्तिक पूर्णिमा को धार्मिक माहात्म्य के कारण घाटों पर स्नान-ध्यान को आते और घरों से लाये दीपक गंगा तट पर रखते व कुछ गंगा की धारा में प्रवाहित करते थे, घाट तटों पर ऊँचे बाँस-बल्लियों में टोकरी टाँग कर उसमें आकाशदीप जलाते थे जो देर रात्रि तक जलता रहता था। इसके माध्यम से वे धरती पर देवताओं के आगमन का स्वागत एवं अपने पूर्वजों को श्रद्धांजलि प्रदान करते थे। धीरे-धीरे देव दीपावली ने एक दिव्य व भव्य त्यौहार का रूप धारण कर लिया। पंचगंगा घाट पर चंद दीपों की टिमटिमाहट के साथ शुरू हुई काशी की देव दीपावली अब लोकल से ग्लोबल हो चुकी है। आसमान के सितारों के जमीं पर उतर आने का आभास देने वाली काशी की देव दीपावली को देखने देश-दुनिया से बड़ी संख्या में श्रद्धालु और पर्यटक आते हैं। इस दिन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी काशी के ऐतिहासिक घाटों पर कार्तिक पूर्णिमा को माँ गंगा की धारा के समानांतर असंख्य दीप प्रवाहमान होते हैं। असंख्य दीपकों और झालरों की रोशनी से रविदास घाट से लेकर आदिकेशव घाट और वरुणा नदी के तट एवं घाटों पर स्थित देवालय, महल, भवन, मठ -आश्रम जगमगा उठते हैं, मानो काशी में पूरी आकाश गंगा ही उतर आयी हों। गंगा आरती के बीच मिट्टी के लाखों दीपक गंगा नदी के पवित्र जल पर तैरते हैं। विभिन्न घाट और आसपास के राजसी आलीशान इमारतों की सीढियाँ, धूप और मंत्रों के पवित्र जाप के आह्वान से लोगों में एक नए उत्साह का निर्माण करती हैं। काशी की देव दीपावली न सिर्फ सांस्कृतिक और धार्मिक, बल्कि पर्यटन के लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण है। देश-दुनिया से तमाम लोग इस दिन काशी में गंगा घाटों के अद्भुत दृश्य को निहारने और आत्मसात करने आते हैं। विभिन्न घाटों पर वैदिक मंत्रोच्चारण के बीच गंगा आरती, दीप दान, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बीच यह कल्पना करके ही हृदय हर्ष और उल्लास से भर जाता है कि जब काशी में गंगा के 84 घाटों पर एक साथ लाखों दीप प्रज्वलित होते होंगे तो यह दृश्य कितना मनोरम होता होगा। देव दीपावली सिर्फ उत्सव भर नहीं है, बल्कि प्रकृति के सान्निध्य में दीपों के प्रज्वलन के साथ-साथ यह स्वयं को भी आलोकित करने का पर्व है। तभी तो यहाँ से कुछ दूर स्थित सारनाथ में भगवान बुद्ध ने भी ज्ञान देते हुए कहा था- अप्प दीपो भव:।

आकांक्षा यादव , पोस्टमास्टर जनरल आवास नदेसर, कैण्ट प्रधान डाकघर, वाराणसी-221002

लघुकथा :

उपाय

एक गाँधीवादी अपने घर पर पत्नी के साथ अकेला था और सोने की तैयारी कर रहा था।

तभी एक आतंकवादी उसके घर में घुस आया और उसकी पत्नी के साथ छेड़छाड़ करने लगा। उसकी पत्नी डरकर पति की ओर देखने लगी कि मुझे बचाने के लिए यह कुछ करेगा।

गाँधीवादी उस आतंकवादी के पास आया और हाथ जोड़कर बोला- "कृपया मेरी पत्नी को छोड़ दो।"

यह सुनते ही आतंकवादी ने उसके एक गाल पर ज़ोर का तमाचा मार दिया। इस पर गाँधीवादी ने अपना दूसरा गाल भी उसकी ओर कर दिया और पत्नी को छोड़ने का फिर निवेदन किया। इस पर आतंकवादी ने उसके दूसरे हाल पर और ज़ोर का तमाचा जड़ दिया और उसकी पत्नी से बलात्कार करने के लिए तैयार होने लगा।

अपने दोनों गालों पर तमाचे खाकर गाँधीवादी का गाँधीवाद हवा में उड़ गया। उसने अपने आस-पास देखा, तो उसे लोहे का एक मूसल दिखाई दिया। उसने चुपचाप मूसल उठाया और पूरी ताक़त से बलात्कारी के सिर पर पीछे से दे मारा। इस प्रहार से बलात्कारी का सिर फट गया और वह चीख मारते हुए बेहोश हो गया।

गाँधीवादी समझ चुका था कि आतंकवादियों और बलात्कारियों को रोकने का यही सही उपाय है, क्योंकि जो मूसल से ही मानते हैं वे बातों से कभी नहीं मान सकते। □

- डॉ. विजय कुमार सिंघल, आगरा

मोबाइल की लत

"अरे मटरु! खाना प्लेट में घंटा भर से पड़ल हे, दिखखत नाही ?"

"अरी मठरी...! खाना आगे में हे, खात काहे नाहीं ?"
माँ ने दोनों बच्चों के पास जाकर पुचकारते हुए उनसे कई बार कहा।

"सुन रमरतिया... दिखखत तो तोरा नाहीं .. ! घंटा भर से दुनु मोबाइल में घुस्सल हे। ई लोनी के गिटपिट करये से फुर्सत मिलत तब तो आगे रख्खल प्लेट के मुँह देखत ! आजकल के बुतरू मोबाइल के भूख्खर रहत हे, खाना के नाहीं ...। "

पत्नी को घंटे भर से बच्चों के पीछे परेशान देख, पति पेपर पढ़ना छोड़ तमतमाते हुए उल्टे उसी पर बरस पड़े। रमरतिया समझ नहीं पा रही थी कि पति के आक्रोश को गले से लगाऊँ या बच्चों के भूखे पेट को।

मिन्नी मिश्रा, पटना

लघुकथा : विभा रश्मि

निर्मिति

आज टी.वी. के हर चैनल पर उस खूबसूरत लड़की की चर्चा थी, जो बहुदलीय बैठक में मंत्री जी के साथ - साथ दिखाई पड़ रही थी।

"नई या पुरानी पहचान ... कुछ तो होगा ही ? "

"नहीं ऐसा कुछ नहीं। " मंत्री जी सावधानी से चारों ओर देख कर अपने साथ बैठे धोती धारी को सफ़ाई देते हुए बोले।

" मंत्री जी , मैंने कार्यकर्त्ताओं की भीड़ में से ये नायाब हीरा ...। कन्या में लीडर बनने का 'स्पार्क' दिखा , सो चांस दे ही दिया।

यू नो आई एम लीडर मे... ।" कहते हुए मंत्री महोदय अपने जाने -माने स्टाइल में ठठा कर हँसे।

मंत्री जी और उनकी नई खूबसूरत पी.ए.का .मोबाइल बार- बार बज रहा था । फूलों के गुलदस्ते व बधाई देने वालों का तांता थम नहीं रहा था ।

मंत्री जी ने आवश्यक मीटिंग के लिये नई सेक्रेटरी को बुला भेजा और चर्चा के लिये मुद्दों की फाइल मेज पर रख दी। फिर अपने नेत्र मूँद गहन सोच में डूबे होने की मुद्रा बना ली। वे सोच रहे थे -

" राजनैतिक कैरियर भी कितना फलदायी हो गया है आजकल ... ।"

उनके मन -मस्तिष्क की वक्रता उनके अधरों पर फैलती चली गई।

समकालीन परिवेश में बाल साहित्य

सभ्य बाल विकास में बाल-साहित्य की भूमिका

कृष्ण कुमार यादव
(पोस्ट मास्टर जनरल, वाराणसी)

बच्चे राष्ट्र की आत्मा हैं क्योंकि इन्हीं पर अतीत को सहेज कर रखने की जिम्मेदारी है, इन्हीं में राष्ट्र का वर्तमान रूख करवटें ले रहा है और इन्हीं में भविष्य के अदृश्य बीज बोकर राष्ट्र को पल्लवित और पुष्पित किया जा सकता है। बच्चों के समग्र विकास में बाल साहित्य की सदैव से प्रमुख भूमिका रही है। बाल साहित्य बच्चों से सीधा संवाद स्थापित करने की विधा है। बाल साहित्य की विषय वस्तु बालक भी हो सकता है और वह विस्तृत परिवेश भी जिसके साथ बाल जीवन विकसित होता है। वस्तुतः एक तरफ बाल साहित्य जहाँ मनोरंजन के पल मुहैया कराता है वहीं बाल मनोविज्ञान व बाल मनोभाव के समावेश द्वारा सामाजिक सृजन के दायरे भी खोलता है। बाल साहित्य बच्चों को उनके परिवेश, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, संस्कारों, जीवन मूल्य, आचार-विचार और व्यवहार के प्रति सतत् चेतन बनाने में अपनी भूमिका निभाता आया है। सोहन लाल द्विवेदी जी ने अपनी कविता 'बड़ां का संग' में बाल प्रवृत्ति पर लिखा है कि- खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगंध फैलाओगे।/खेलोगे तुम अगर धूल से तो गन्दे हो जाओगे/कौवे से यदि साथ करोगे, तो बोलोगे कड़ुए बोल/कोयल से यदि साथ करोगे, तो दोगे तुम मिश्री घोल/जैसा भी रंग रंगना चाहो, घोलो वैसा ही ले रंग/अगर बड़े तुम बनना चाहो, तो फिर रहो बड़ों के संग।

बाल साहित्य का इतिहास बहुत पुराना रहा है। प्राचीन काल में बच्चों के लिए अलग से साहित्य रचना की परम्परा नहीं रही वरन् तमाम ग्रन्थों में ही बालोपयोगी प्रसंग समाहित किये जाते रहे। वेद, पुराण, आरण्यक, रामायण, महाभारत, बौद्ध व जैन ग्रन्थों में कहानियों और जीवन प्रसंगों का भण्डार है। कहा जाता है कि भगवान श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का निरूपण करने वाले महाकवि सूरदास हिन्दी के प्रथम बाल काव्य साहित्यकार थे। उन्होंने जिस सरल व रोचक ढंग से बाल-लीलाओं का वर्णन किया, वह आज भी बाल काव्य लेखन को नई दिशा प्रदान करने में सक्षम है। इसी प्रकार पंचतंत्र की कहानियों को सर्वाधिक प्राचीन सुव्यवस्थित बाल कहानी साहित्य माना जाता है। पंचतंत्र की कहानियाँ व्यवहारिक जीवन में सफल होने के गुणों को कहानियों के माध्यम से रूचिकर ढंग से बताती हैं। आज की बाल रचनायें उसी घटनात्मकता की देन हैं, जो इन प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित हैं। इन ग्रन्थों में नैतिक शिक्षा पर आधारित रचनायें सामयिक बाल साहित्य की गौरव निधि हैं। इन कथा-कहानियों व कविताओं के माध्यम से बच्चों में दिव्य और दुर्लभ गुणों का विकास हुआ है।

आधुनिक काल में हिन्दी में बाल साहित्य विधा की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 1882 में प्रकाशित 'बाल दर्पण' से मानी जाती रही है, पर इसका विधिवत आरम्भ 1915 में प्रकाशित 'शिशु' और 1917 में प्रकाशित 'बाल सखा' पत्रिका से हुआ।

बच्चों का साहित्य संसार बड़ा ही विस्तृत है। बाल साहित्य में कवितायें, कहानियाँ, नाटक, एकांकी, उपन्यास, जीवनी, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख, यात्रा संस्मरण इत्यादि सभी शामिल है। बस फर्क यह है कि जहाँ बड़ों के साहित्य में बड़ों की भाषा तथा बड़ों की भावभूमि व परिवेश का समावेश होता है, वहीं बाल साहित्य की भाषा सरल, रोचक व मनोरंजक होती है। बाल साहित्य का सृजन करते समय बाल-साहित्यकार को बच्चों की जिन्दगी में प्रवेश करना होता है। बाल साहित्य बच्चों की उम्र के साथ व उनकी मानसिकता के अनुरूप होता है, वहीं यह कभी बोझिल नहीं होता और बच्चे स्वतः इसके अध्ययन के प्रति प्रेरित होते हैं। वस्तुतः बच्चों में स्वस्थ अध्ययन की आदत डालने का भी यह एक नायाब तरीका है। अध्ययन करना मात्र एक बौद्धिक अनुभव ही नहीं है अपितु इससे भावनात्मक अनुभवों की भी प्राप्ति होती है। अध्ययन करते समय प्रसन्नता, हास्य, रूचि, उत्साह और महत्वाकांक्षा का भी विकास होता है, जो कि बाल मन के उन्नयन हेतु जरूरी है। सम्भव हो तो बच्चों को उपहार में अच्छी बाल पुस्तकें दी जायें और उनके जन्मदिन पर किसी अच्छी बाल पत्रिका की सदस्यता।

बाल साहित्य में सर्वाधिक प्रचलित विधा काव्य है क्योंकि कविता बच्चों को सहज रूप में प्रभावित कर उनके दिलो-दिमाग में उतर जाती है। विभिन्न आयु वर्गों की मानसिकता के हिसाब से बाल कवितायें लिखी जाती रही हैं। जहाँ पाँच वर्ष तक के बच्चों हेतु लिखी गयी कविताओं में तुकबन्दी व लयात्मकता पर जोर दिया जाता है, वहीं पाँच से बारह वर्ष तक के बच्चों हेतु लिखी गयी कविताओं में उनके परिवेश व वातावरण को भी सामान्य ज्ञान के नजरिये से उकेरा जाता है। जबकि बारह से सोलह वर्ष के बच्चों हेतु लिखी बाल कविताओं में उनकी आशाओं, अकांक्षाओं व उमंगों को प्रेरित किया जाता है। बाल साहित्य की एक अन्य प्रचलित विधा कहानी है। बाल कहानियों में जटिल से जटिल विषयों को रोचक व मनोरंजक घटनाक्रम के माध्यम से सहज भाषा में उकेरा जाता है। ऐसे में बाल मन इन घटनाओं के माध्यम से तथ्यों को भलीभाँति समझ लेता है और उनका चंचल मन तारतम्य रूपी घटनाक्रम से बँधकर एकाग्रता की दिशा में अग्रसर होता है। चूंकि बच्चों को अपने परिवेश से सम्बन्धित वस्तुयें भाती हैं, ऐसे में उनकी कल्पना इतनी उर्वर होती है कि थोड़े ही संकेतों के आधार पर वे कहानी के सभी पात्रों से तादातम्य स्थापित कर लेते हैं। बाल सुलभ मनोवृत्तियों के अनुरूप पशु -पक्षियों इत्यादि को पात्र बनाकर इन कहानियों के माध्यम से बच्चों को सत्य, अहिंसा, प्रेम, एकता, परोपकार, ईमानदार, दयालु, साहसी, पराक्रमी मधुर वचन, धैर्य, विश्व-बंधुत्व, पारस्परिक सद्भाव इत्यादि सामाजिक-नैतिक आदर्शों की तरफ और राष्ट्रभक्त बनने की तरफ उन्मुख किया जाता है। 'पंचतंत्र की कहानियाँ' इसका सबसे प्रबल उदाहरण है। पंचतंत्र के लेखक विष्णु शर्मा ने मंदबुद्धि राजकुमारों को शिक्षा देने के लिये इन कहानियों की रचना की थी, जिसके माध्यम से राजकुमारां को लोक जीवन की व्यवहारिकता और उसमें सफल होने के सभी गुण सिखाये गये थे।

बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं, अतः जरूरत है उनकी जिज्ञासा को स्वस्थ रूप में हल किया जाय। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी के लांदे को खूबसूरत आकार देता है, उसी प्रकार

बाल साहित्य बच्चों में स्वस्थ संस्कार रोपित करता है। आज बाल साहित्य पर यह आरोप लगाया जाता है कि बाल साहित्य नाम से जो कुछ छप रहा है उसमें मौलिकता और सार्थकता का अभाव है। यही नहीं ज्यादातर पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को बाल साहित्य की समझ ही नहीं, और वे जो कुछ छापते हैं, लोग उसे ही बाल साहित्य समझ कर उसका अनुसरण करने लग जाते हैं, जिससे बाल साहित्य की स्तरीयता प्रभावित होती है। इन पत्रिकाओं में बाल साहित्य आधारित दूरदर्शी सोच का अभाव है। आलोचना के नाम पर भी बाल साहित्य में मात्र पुस्तकों की समीक्षायें लिखी जा रही हैं। यही कारण है कि बाल साहित्यकार को रचनाओं में मनोरंजकता का पुट देते हुये यह भी सुनिश्चित करना पड़ता है कि उनमें किसी अंधविश्वास, कुसंस्कार, कुरीति व अभद्रता को प्रश्रय न मिले। यदि बच्चों पर किसी भी रूप में प्रतिबन्ध लगाया गया तो वे अधकचरे साहित्य और अधकचरे ज्ञान की तरफ आकर्षित हांगे, जो कि उनके विकास और अन्ततः स्वस्थ समाज के विकास में बाधक होगा। बच्चे आने वाले कल के कर्णधार हैं। बच्चों को प्राप्त शिक्षा, संस्कार और सामाजिक मूल्य ही कल के राष्ट्र का निर्माण करेंगे। इस कार्य में बाल साहित्य की प्रभावी भूमिका है, क्योंकि इसके माध्यम से ही बच्चों में तमाम अभिरूचियाँ और आदर्श पल्लवित व पुष्पित होते हैं। बच्चों में यदि अच्छा साहित्य पढ़ने की आरम्भ से आदत डाली जाये तो वे तमाम कुप्रवृत्तियों से वैसे ही बच जायेंगे। पर जरूरत है कि बाल साहित्य की आड़ में व्यवसायिक हितों को लेकर सतही मनोरंजन उपलब्ध कराने वाली पुस्तकों से सावधान रहा जाये। नैतिक शिक्षा के नाम पर ढपोरशंखी बातें पढ़ाने की बजाय सामाजिक व व्यवहारिक मूल्यों का ज्ञान कराया जाय। बच्चों के विकास में साहित्य और विज्ञान का बराबर महत्व है। विज्ञान जहाँ व्यक्ति को आत्म केन्द्रित और भौतिकवादी बनाता है वहीं साहित्य उसे सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों से संस्कारित करता है। ऐसे में अन्धविश्वास और पलायनवादी दृष्टिकोण पर आधारित साहित्य की बजाय उद्देश्यमूलक बाल साहित्य के सृजन की जरूरत है।

बाल साहित्य के क्षेत्र में यह सवाल तेजी से उठने लगा है कि आज बच्चों की ग्राह्य क्षमता, मानसिकता और परिवेश में जिस तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, उनके अनुरूप बाल साहित्य नहीं रचा जा रहा है। इसका एक कारण बाल साहित्य विधा के प्रति सरकार की उदासीन सोच भी है। बाल साहित्य को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल करने की जरूरत है और स्नातक-परास्नातक कक्षाओं में संकलित लेखकों-रचनाकारों के सम्पूर्ण कृतित्व की चर्चा में बाल साहित्य को भी जोड़ने की जरूरत है। हालात यह हैं कि प्रश्न-पत्रों में शायद ही कभी बाल साहित्य को लेकर प्रश्न पूछा गया हो। यही कारण है कि बड़े-बड़े आलोचक आज भी बाल साहित्य का नाम आते ही मुँह बिचका लेते हैं। दूसरी तरफ बाल साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने और उनमें स्वस्थ प्रतिस्पर्धा कायम करने हेतु बाल साहित्य के नाम पर कुछ बड़े पुरस्कार भी आरम्भ करने की जरूरत है। भूमण्डलीकरण और उभोक्तावाद के इस दौर में बच्चों के

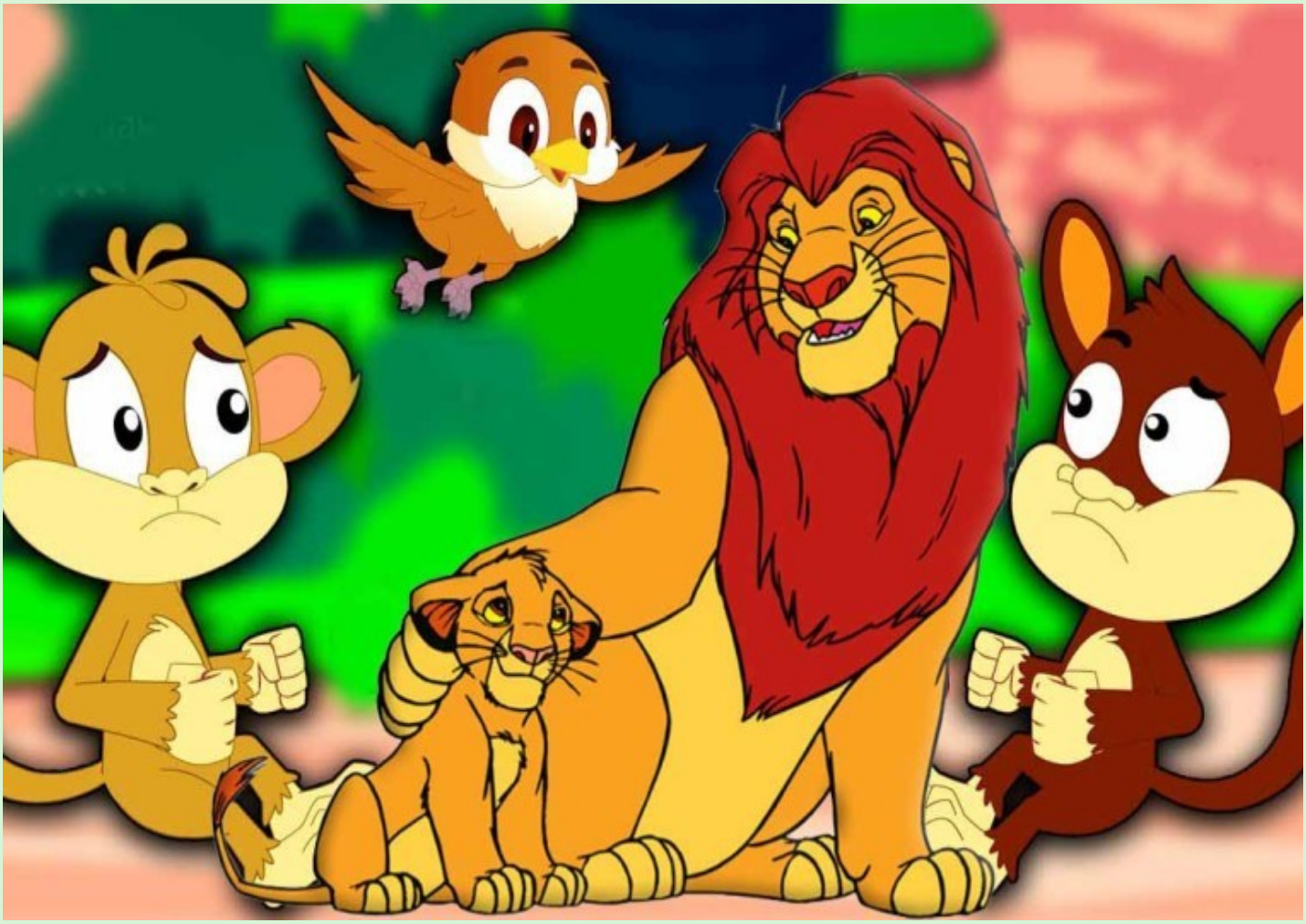

खिलौने बदल गये हैं। इण्टरनेट व मीडिया ने भी बच्चों के संसार को बदलने में अहम् भूमिका निभायी है। नतीजन मोबाइल, टेलीवीजिन और कम्प्यूटर जैसी आधुनिक तकनीकों पर वे कम उम्र में ही हाथ आजमाने लगे हैं। सर्वसुलभ सुविधाओं, नगरीकरण, विज्ञान के नये प्रयोगों व टेक्नोलॉजी के बढ़ते इस्तेमाल, शिक्षा और ज्ञान के बाजार में नये-नये फार्मूले इत्यादि के चलते बच्चे कम उम्र में ही अनुभव और अभिरूचियों के विस्तृत संसार से परिचित हो जाते हैं। नयी-नयी बातों को सीखने की ललक और नये एडवेन्चर उन्हें दिनों-ब-दिन एडवांस बना रहे हैं। उनकी दृष्टि प्रश्नात्मक है तो हृदय उद्गारात्मक। ऐसे में जरूरत है कि बच्चों को राजा-रानी, परियों और भूतों की कपोल कल्पित कहानियों से परे यथार्थवादी बाल साहित्य से परिचित कराया जाये और बाल साहित्य को गुणात्मक ह्रास से बचाया जाये। बच्चों में नयी जानकारियों के साथ नवीन सोच पैदा की जाये, नयी दिशाओं के साथ जीवन के तमाम आयामों से उन्हें रूबरू कराया जाये और बदलती दुनिया के साथ बदलते परिवेश में उन्हें नयी दशा और दिशा दी जाये। बाल-मानसिकता एवं ग्राह्यता के अनुरूप बच्चों को ज्ञान-विज्ञान की आधुनिकतम जीवनोपयोगी जानकारी दी जाये। आज की पीढ़ी के बच्चे पिछली पीढ़ियों द्वारा पैदा की गयी विसंगतियों से भी टकरा रहे हैं, चाहे वह पर्यावरण असन्तुलन हो या बढ़ता प्रदूषण। भूमण्डलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण के चलते तेजी से बदली सामाजिक-पारिवारिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण साहित्य में सामंजस्य और संतुलन स्थापना की जो सुगबुगाहट और बेचैनी परिलक्षित हुई, बाल साहित्य के क्षेत्र में भी उसका प्रभाव पड़ना लाजिमी है। अभिभावकां की मानसिकता व समस्यायें, संयुक्त परिवारों का विघटन, माँ-पिता दोनों का कमाऊ होना जैसे तत्व भी बच्चों पर प्रभाव डाल रहे हैं। ऐसे में बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्यायें और उनकी मनोभावनायें भी बाल साहित्य में उभरनी चाहिये। इन सब के बीच ही बच्चे एक स्वस्थ व प्रसन्नचित समाज की आकांक्षा कर सकते हैं। कभी अज्ञेय ने बच्चों की दुनिया के बारे में कहा था कि- ''भले ही बच्चा दुनिया का सर्वाधिक सम्वेदनशील यंत्र नहीं है पर वह चेतनशील प्राणी है और अपने परिवेश का समर्थ सर्जक भी। वह स्वयं स्वतन्त्र चेता है, क्रियाशील है एवं अपनी अंतःप्रेरणा से कार्य करने वाला है, जो कि अधिक स्थायी होता है। ''निश्चिततः बाल साहित्य को वक्त के साथ इन सभी चीजों को अपने दायरे में समेट कर उद्देश्यमूलक बनाना होगा। बाल साहित्य को बालकों में जीवन के उच्च मूल्यों व आदर्शों के प्रति निष्ठा जगाने, राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप संस्कार रोपित करने, जीवन के हर पल में उमंग भरने और बदलते परिवेश के साथ उनमें रचनात्मक कल्पनाशीलता व तद्नुसार सृजन के प्रति प्रेरित करने वाला होना चाहिये। अच्छे बाल साहित्य के लिये जरूरी है कि साहित्यकार न केवल अपने अन्दर के बच्चे को जीवन्त रखे वरन् बच्चों की दुनिया से अपने को पूरी तरह आत्मसात् भी रखे। इसके अभाव में बाल साहित्य मात्र कोरा अभ्यास ही कहा जायेगा।

कृष्ण कुमार यादव , पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002
मो0- 09413666599 ई-मेलः kkyadav.t@gmail.com

नदी की धार लिख

आँख मीचते हो और कहते हो दिखता नहीं
परिवर्तन का नर्तन क्या तुम्हें दिखता नहीं
आँख खोलकर देखना अब तो आरंभ कर
रट क्यूँ लगाये हो दिखता नहीं दिखता नहीं।
तू कवि है तू दृष्टा है जगत का
जो दिखता उसे क्यूँ लिखता नहीं
रचनाकार कभी स्वार्थी हो नहीं सकता
फिर परमार्थ पर क्यूँ लिखता नहीं।
माना कि स्वार्थ सबल होता है संसार में
पर प्यार की ताकत भी कम नहीं संसार में
जिस राह पर चल रहे हो आजकल तुम
वो पतन के गर्त में ले जाती है संसार में।
इसलिए खुद को बचा संसार को भी
सहिष्णुता के संग अपने प्यार को भी
बहा बंधुत्व की नदियाँ अपनी लेखनी से
कूल को भी कर पवित्र धार को भी।
लिख पुष्प की खुशबू शाख की नाजुकता
तितलियों का मँडराना भँवरे की आकुलता
लिख मयूर का नर्तन कपोत का प्यार लिख
इठलाती बल खाती नदी की धार लिख।
लिख अचल पहाड़ पर झील की गहराई सी
सदा लिख ऐसा कि लगे स्वयं की परछाई सी
लिख लहर समुद्र की तैरती नावों को लिख
डूबता सूरज को लिख रात के ख्वाबों को लिख।
लिख मगर ऐसा ना जिससे भाईचारा हो खतम
कविता के सदभाव पर कभी ना करना ये सितम
द्वेष कटुता ईर्ष्या के भाव कभी आये ना मन में
दिखाई न दे दोष कवि दूर तक फन में
प्यार मधुरता स्नेह के जब होंगे रंग
फिर करेगा न्याय तू कविता के संग
तब उड़ेगी कीर्ति की ध्वजा समझ ले
जायेगी फिर ऊंची गगन तेरी पतंग।

व्यग्र पाण्डे

फर्जी

बन गई हैं दादी बी॰ डी॰ सी॰

बैठा विकास की मीटिंग में
बिन आँख कान का देशी घी

कहते हैं परिवर्तन आकर
सारी तस्वीर बदल देगा
पर दादी पोते ने मिलकर
दिखलाया नियमों को ठेंगा

रोते रहते हैं प्रावधान
उड़ती रहती जिनकी धज्जी

जल रही बड़ी मजबूती से
इस लोकतन्त्र की बाती है
जिस मुद्दे पर कहता पोता
दादी बस हाथ उठाती है

आड़ा तिरछा टेढ़ा मेढ़ा
हर चाल चल रहा है फर्जी

है गति विकास की बहुत तेज
आँकड़े कह रहे सरकारी
हर तबके ने तय कर ली है
अपनी अपनी हिस्सेदारी

सबकी अपनी अपनी दुनिया
सबकी अपनी अपनी मर्जी

सूर्य प्रकाश मिश्र

वादा

सविता मिश्रा 'अक्षजा'

"हे मानव, तुमको गिरते देखकर मैंने तुम्हें पकड़ लिया है| हाथ मत छोड़ना, मजबूती से पकड़कर रखना| वरना तुम गिरे तो मैं भी नष्ट हो जाऊँगी। तुम्हारे सहारे ही तो मैं जीवित हूँ, नदियों में, तालाबों में, नलों से होते हुए तुम्हारे घरों तक।"

फिसलती चट्टानों से सम्भलकर वह उठ ही रहा था कि फुसफुसाहट सुनकर उसके कान खड़े हो गए। "अरे! अरे! देखना, छोड़ना नहीं, किसी भी हाल में नहीं। पीने-नहाने के लिए मैं चाहिए तुम्हें कि नहीं! यदि चाहिए तो फिर कसकर पकड़े ही रहना, वरना अँगुली भर रह जाऊँगी मैं।"

झरने के नीचे खड़े होकर पानी से खेलते हुए कानों में वही आवाज पुनः गूँजी तो वह भौचक्का-सा चारों ओर देखने लगा। अपने कल-कल को पीछे छोड़ती हुई वही आवाज फिर आयी तो वह पानी की ओर हाथ बढ़ाए हुए स्टेच्यु की स्थिति में आ गया। "भरा-पूरा शरीर था कभी मेरा| कुआँ, तालाब, नहर-नदी के रूप में बहती हुई मैं शहर-गाँवों को गुलजार रखती थी| लेकिन अब...! तुम्हारे दादा-पर-दादा ने कीमत नहीं समझी मेरी। तुम्हारी पीढ़ी तो उनसे दो कदम आगे चलने लगी। अभी हाथ भर रह गई हूँ, हो सके तो मेरी कीमत समझो और थाम लो मुझे। जैसे तुम्हारे बाद भी, तुम्हारे बच्चे मेरी अँगुलियों को छू सकें| मैं परी कथाओं में जीवित नहीं रहना चाहती हूँ मानव| क्यों थामे रहोगे न!"

मूर्तिवत उसने हाँ में अपनी मुंडी हिला दी। "यदि तुम्हारी पीढ़ी ने भी अनदेखा किया न तो अपने आँसुओं में ही पाएगी मुझे।"

झरने के नीचे खड़ा मानव झरने से आते छटाँग भर पानी को देख गहरी सोच में डूब गया।

"सुनो, तुम मुझे जीवन दो, बदले में मैं तुम्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखूँगी, वादा है ये मेरा।"

-कृष्ण मनु

सरस विधा

मन का बोझ जब उतर जाये तब तन का बोझ बढ़ जाता है। यही हुआ था सरस के साथ। हफ्तों से चले आ रहे काम के बोझ से परेशान वह न समय पर घर आ पा रहा था, न उसे ठीक से नींद आ पा रही थी। जिस प्रोजेक्ट के लिये उसे एस्टिमिट तैयार करने को कहा गया था उसके लिये समय कम दिया गया था। दो हफ्ते बाद मुख्यालय से टीम आनेवाली थी निरीक्षण के लिये। प्रोजेक्ट की स्वीकृति उसी समय लेनी थी इसीलिए ईस्टिमिट भी इसी अवधि के भीतर तैयार करना था। दिन रात एक करके सरस ने ईस्टिमिट तैयार करने के बाद एक दिन पूर्व ही अपने बॉस को सौप दिया था।

मन का बोझ आज हल्का हुआ था। तनावमुक्त होते ही तन भारी हो चला था। इतने दिनों के तनाव में शरीर की सुध भी कहाँ थी ! समय से पहले ही वह घर आ गया था। सोफे पर निढाल होकर पड़ते ही आंखें बोझिल होने लगीं तो वह लंबी सी जम्हआई लेकर आंखें बंद कर लीं।

शाम के पांच बज चुके थे। अभी तक विधा नहीं आयी थी। वह प्रतीक्षा करते हुए नीद की गहराइयों में उतरता चला गया। उसकी नींद खुली तब जब दरवाजा खोले जाने की आहट हुई। विधा को अंदर आते हुए उसने उनीदी आंखों से देखा। वह जब तक एक लंबी अंगड़ाई के साथ सोफे से उठता कि तबतक विधा सिंगल सोफे पर खुद को गिरा ली। वह चेहरे का पसीना पोछने लगी।

- " विधा, पूरा बदन दर्द से ऐंठ रहा है । यार, एक कॉफी बनाना फटाफट।"

विधा थकी हुई थी। आज स्कूल में नए इंस्पेक्टर ने निरीक्षण के क्रम में उसे काफी परेशान किया था। कई रिपोर्ट्स में त्रुटियां पाकर डाँट भी लगा दी थी जिसके कारण वह दुखी और क्लांत थी। ऊपर से सरस द्वारा कॉफी बनाने का आदेश । विधा जलजला उठी।

-" एक दिन खुद कॉफी बना नहीं सकते हो, सरस। आज खुद बनाकर पी लो।"

विधा की तेज आवाज ने सरस के आलस्य पर पानी डाल दिया। उसकी उनींदी ऑखों की नींद अचानक काफूर हो गई। आँखों में किंचित

आश्चर्य भरकर उसने एक नज़र विधा पर डाली। विधा आंखें बंदकर थकान मिटा रही थी। परेशानी और गुस्से की महीन सी चादर अब भी उसके चेहरे पर फैली हुई थी।

सरस अनिमेष देखता रहा विधा के चेहरे को। इस स्थिति में वह और भी सुंदर दिख रही थी। प्यार उमड़ आया उसे। लेकिन आज तो विधा को चिढ़ा कर मजा लेने की ठान ली थी उसने। उसे तो याद ही नहीं, पिछली बार कब उनमें नोकझोंक हुई थी। हुई थी भी या नहीं। अचानक उसके जेहन में किशोर दा गुनगुना उठे- शरारत करने को ललचाये रे, मेरा मन, मेरा मन...!

उसने भीतर हिलोरें मार रही विधा के प्रति प्यार को दबाया फिर चेहरे पर नाराजगी का मुखौटा पहन लिया- " ऐसा क्या मैंने कह दिया कि तुम पिनक उठी। क्या मुझे कॉफ़ी बनाना नहीं आता?"

थकान मिटा रही विधा का तेवर तल्ख हो उठा- क्या होता जा रहा है सरस को ? इसके पहले तो कभी इतनी कड़ी आवाज में बात नहीं की । मेरी थकान, परेशानी के बारे में पूछना चाहिए था उसे। उल्टा रौब गांठ रहा है। आज मैं भी ठान ही ली हूँ। हनने पर हनिये दोष पाप एको नहीं गनिये। जब सामने वाला लड़ने को ललकार रहा हो तो हथियार डालना कायरता है। वह प्रगट में बोली-" मैं कहाँ कह रही हूं कि तुम्हें कॉफी बनाना नहीं आता।"

-" अरे, मैं वे सारे काम कर सकता हूँ जो तुम करती हो। काम ही क्या है, खाना पकाना और शब्दांश को स्कूल भेजना। " सरस ने चुटकी बजाते हुए कहा-" मुश्किल से डेढ़-दो घंटे के काम को मैं यूँ चुटकी में निपटा सकता हूँ।"

सरस के होठों के बीच फंसी मुस्कान को विधा देख नहीं पायी। वह थोड़ा और तल्ख हो गई-" तुम्हारा कौन ऐसा काम है जो मैं नहीं कर सकती। सब्जी और खाने के सामान खरीदकर लाना कौन सा तीर चलनेवाला काम है। महीने में बिजली बिल जमा कर देना। यह भी कोई काम है भला। " विधा ने सरस की ओर व्यंय से देखा-" ये काम तो मैं चुटकी भी न बजाऊँ और हो जाए।"

विधा भी अब मसखरापन पर आ गई थी। हालाँकि अंदर ही अंदर पश्चाताप कर रही थी कि सरस को क्यों कॉफी बनाने को कह दिया। प्रत्यक्ष में कुटिलता का महीन आवरण ओढ़े वह सरस को देखती रही।

-" अच्छा तो ऐसी बात है। तो ठीक है, कल से हम अपने काम बदल लेते हैं। तुम बाहर के काम करोगी और मैं घर के काम निपटाया करूँगा। मंजूर? देखता हूँ, किसमें कितना है दम?" सरस ने बिना लड़े जीते हुए खिलाड़ी के अंदाज़ में कहा।

विधा सोफा छोड़ती हुई बोली-" हार जाओगे, बच्चू। खाना बनाना और बच्चे को स्कूल भेजना, बच्चों का काम नहीं है। "

-" बाहर के काम भी इतने आसान नहीं। धक्के खाकर कमर के पेंच हिल जाएंगे एक ही दिन में, देख लेना।" सरस ने डराना चाहा विधा को। लेकिन विधा जुड़ा बनाती हुई लापरवाह रही-" देखती हूँ, कमर किसकी टूटती है। मैं मोम की गुड़िया नहीं हूँ , सरस। डराओ मत।"

-"जा कहाँ रही हो?" सोफा पर बगल में बैठने का इशारा करते हुए सरस बोला-" यहां बैठो, बात करनी है।"

-" बात करने का अभी फुरसत नहीं है। मैं जा रही हूँ अपने लिये चाय बनाने। तुम्हारे लिए कॉफी बना दूँ? तबतक शब्द को तुम ले आओ। इंतजार कर रहा होगा। "

सरस को जैसे अचानक याद आया। बोला-" अरे हाँ, शब्दांश को तो मैं भूल ही गया था। वैसे, स्कूल से घर आते समय तुम्हीं साथ लेती आती हो न। तुम भी आज भूल गई। ओह, आज तुम परेशान और थकी हुई थी । मैं जा रहा हूँ।"

-" मैं पूछ रहीं हूँ, तुम चाय पिओगे या कॉफी?" चेहरे पर हल्का सा मुस्कान लाते हुए विधा बोली-" कल से तो तुम्हें ही बनाना है।"

बनाने के नाम से ही सरस सिहर उठा पर चेहरे का भाव छिपाते हुए बाहर निकल गया।

रात का खाना खाने के बाद सरस सेंटर टेबल पर रखा एक नॉवेल उठाकर पढ़ने लगा। विधा शब्द को सुलाने और किचेन के सामान समेटने के बाद छोटे तौलिये से हाथ पोछती हुई आयी-" चलिये मिस्टर, भले बच्चे की तरह सो जाइये। पांच बजे सुबह आपको बिस्तर त्याग देना पड़ेगा। शब्द को उठाना, उसे स्कूल के लिये तैयार करना, टिफ़िन तैयार करके देना। शायद आपको यह भी पता नहीं होगा कि स्कूल बस 7.30 बजे आ जाती है। कम से कम 10 मिनट पहले आपको बस पड़ाव पहुचना होगा।"

सरस के हाथ से नॉवेल झटक कर विधा थोड़ा

आँखें बड़ी करके सरस को देखने लगी-" जाइये, सो जाइये। याद है न, पांच बजे सुबह ही उठना होगा।" और खुद आराम से पैर पर पैर रखकर पढ़ने लगी।

सरस पांच बजे सुबह उठने के नाम से कांप उठा। वह तो इम्तिहान के दिनों में भी कभी इतना सबेरे नहीं जगा था। उसने आंखें टेडी करके विधा को देखा। उसकी बेफिक्री देखकर आहत हो गया वह। क्यों आफत मोल ले ली उसने? ठीक है, जब ले ली तब ले ली। अब झुकना क्या? वह अन्यमनस्क सा बिस्तर पर जाते हुए बोला-" ठीक है, ठीक है, जाता हूँ। इतना डराती क्यों हो? मैं पांच बजे सुबह नहीं जग सकता क्या ?"

सरस बिस्तर पर लेट तो गया लेकिन नीद उसकी आँखों से कोसों दूर थी। जिसकी आदत ग्यारह- साड़े ग्यारह बजे रात को सोने की हो उसकी नींद दस बजे आये भी तो कैसे? सरस ने आँखें भींच ली थीं । लेकिन नींद की जगह वह बीते दिनों की यादों में समाता चला गया।

विधा से पहली मुलाक़ात कॉलेज में हुई थी । नए आये कॉलेज के साथियों ने उसे ही मिस्टर फ्रेशर चुना था। मिस फ्रेशर का ताज जिस मिस के सिर पर डाला गया था उसके नाम से ही वह वाकिफ था- विधा। सामना तब हुआ जब स्टेज पर उसे और मिस फ्रेशर अर्थात विधा को लाया गया। एक सादे समारोह में नए व पुराने छात्र-छात्रों से भरे हॉल में कॉलेज के नियमानुसार उसे विधा को गिफ्ट देना था और विधा को उसे। यह पहला अवसर था विधा के सान्निध्य का। विधा का गेहुआ रंग, स्लिम शरीर, गोल- गोल भरे सुंदर मुलायम चेहरे की मासूमियत , कमान सी तनी पतली- पतली भवें, बाहर की ओर निकलती बड़ी- बड़ी बोलती सी आंखें। विधा पर पहली नजर डालते ही वह कुर्बान हो गया था। घनी पलकों की बोझ से दबी हुई सी, बड़ी आँखों से विधा ने जब गिफ्ट देते हुए उसे देखा तो वह कट कर रह गया था। यह पहली नजर का प्यार नहीं, आकर्षण था।

शायद विधा भी पहली नजर में उसके प्रति आकर्षित हो गई थी तभी वह सहेलियों के बीच चाय पीते हुए चोर नजरों से कई बार सरस को देख चुकी थी। एक दो मुलाकातों में उनमें प्यार का अंकुर फूटा और देखते -देखते पौधा बन गया। विधा को सरस की जिंदादिली ने

आकर्षित किया वहीं सरस विधा की शालीनता और चेहरे की गंभीरता पर कुर्बान हो गया।

जहाँ चाह होती है, वहाँ राह मिल ही जाती है। थोड़ी बाधाएँ आईं जरूर लेकिन अंततः वे दोनों परिणय सूत्र में बंधकर हमराही बन गए। शादी के सात सालों बाद भी उनके बीच प्यार का दरिया कभी सूखा नहीं बल्कि भरता ही गया। इस बीच शब्दांश के आगमन ने उन्हें अटूट बंधन में बांध दिया। अब तो उनके वैवाहिक जीवन का लोग- बाग उदाहरण देते हैं।

अचानक यह क्या हुआ। सुंदर परी जिसके आगोश में वह चैन की बाँसुरी बज रहा था, उसके रूप में परिवर्तन कैसे होने लगा। उसके केशराशि बिखर गए, रंग काला हो गया। आंखें बाहर की ओर निकल आईं। मोतियों जैसे दाँत बड़े-बड़े और नुकीले हो गए। वह भागने लगा। चुड़ैल बन गई परी उसे खदेड़ने लगी। वह जान बचाने के लिए गिरते पड़ते भाग रहा था कि सामने खाई आ गई और वह चीखते हुए खाई में समाता चला गया। तभी सरस को लगा उसके कान के पास घंटी बज रही है। उसकी चेतना वापस लौटी। अधखुली आंखों से उसने देखा, वही चुड़ैल फिर से परी का रूप धारण कर उसके चेहरे पर झुकी हुई उसे झिझोड़ रही है। और कान से सटाकर अलार्म बजा रही है। शायद उसे खा जाएगी। वह चीखने लगा।

-" उठिये, उठिये। पांच बज गया। शब्द को उठाइये। उसे स्कूल के लिये तैयार करना होगा। उठिये। चीखने- चिल्लाने से कुछ नहीं होगा। आज से हमारे काम बदल गए हैं। पता है न आपको।" बिस्तर से इतनी सुबह उठाते हुए विधा उसे चुड़ैल सी ही लग रही थी। उसने करवट लेते हुए कहा-" उठता हूँ, भाई। इतना चिल्ला क्यों रही हो?"

जैसे तैसे खुद को सम्हालकर सरस उठ तो गया लेकिन आँखें थीं कि खुल ही ही नहीं रही थीं। एक नजर विधा को आराम से सोया देख वह जल भून गया। चेहरे पर पानी के छींटे मारने के बाद वह थोड़ा चैतन्य हुआ।

-" उठो शब्द। उठो। स्कूल जाना है।" वह शब्द को उठाने लगा। शब्द उठ नहीं रह था। उसे काफी मेहनत करनी पड़ी उठाने के लिये। शब्द उठा तो उसे उसने बाथरूम भेज दिया।

-" पापा, पापा उठो। मैं बाथरूम से आ गया। आप मुझे उठाकर खुद सो गए। उठिये न, मेरे कपड़े जूते कहाँ हैं?"

-"ओह, दे रहा हूँ। अजीब मुसीबत है। " उसकी नजर विधा पर चली गयी। वह जगकर बिस्तर पर पड़ी हुई सरस को ही देख रही थी। सरस की झुंझलाहट से उसे आनंद आ रहा था। उधर बाप

बेटे की धामाचौकड़ी जारी थी।

-" क्या पापा आपने गंदे कपड़े लाकर रख दिये? उधर मेरी अलमारी में मम्मी ने धुले हुए कपड़े रखे हैं। ले आईए।"

-" लाता हूँ, लाता हूँ। इतना शोर क्यों मचा रहे हो?" सरस कपड़े लेकर शब्द को पहनाने लगा-" ठीक से खड़े रहो। क्या हिलडुल रहे हो, कैसे पहनाऊँगा फिर। "

-"रहने दीजिये पापा, मैं खुद पहन लूँगा। आप तो मेरी गर्दन तोड़ देंगे। आप मेरे जूते मोजे ठीक कर दीजिए प्लीज।"

विधा मजा भी ले रही थी। उसे सरस पर तरस भी आ रहा था। अभी तक टिफिन भी तैयार नहीं हुआ था। वह खुद को रोक नहीं पा रही थी। उसका मन हुआ कि टिफिन तैयार कर दे। फिर चुप लगा बैठी।

-" क्या पापा, आप भी। "

-" अब क्या हुआ?"

-" जूते में पालिश नही हुई। छि! कितने गंदे हैं।"

-" अच्छा आज के लिये काम चला लो बेटा। कल चमका दूँगा।"

-" पापा, यह क्या, आपने दो तरह के मोजे रख दिए। आज मम्मी को क्या हुआ? आप से नहीं होगा पापा।"

अपनी हार का ऐलान होते देख सरस बौखला गया-" क्या नही होगा शब्द? सब होगा। अभी मोजा ठीक करता हूँ"

जैसे तैसे टिफिन तैयार कर सरस लंचबॉक्स का ढक्कन खोजने लगा। वह मिल नहीं रह था। शब्द स्कूल बस पकड़ने को तैयार बैठा था-" अब क्या हुआ पापा? जल्दी कीजिए, बस छूट जाएगी। "

-" हाँ, हाँ, चलते हैं।" सरस ढक्कन इधर उधर खोजने में परेशान हो रहा था लेकिन वह मिल नहीं रह था। विधा सरस की परेशानी देख रही थी। जब उसे लगा कि शब्द का स्कूल छूट जाएगा, तब वह भी उठकर ढक्कन ढूंढने लगी। सरस की ओर देख कर वह हँसने लगी। इसी खुली खुली हँसी का तो दीवाना था सरस लेकिन इस समय की हँसी से वह चिढ़ गया।

-" क्यों हँस रही हो इस तरह? मुझे परेशानी में देखकर तुम्हें हँसी आ रही है।"

विधा पर सरस की प्रतिक्रिया का कोई असर नही हुआ। वह पूर्ववत हंसती हुई इशारे से सरस को पास बुलाई-" यह तुम्हारे पजामा का साइड जेब क्यों फुला हुआ है। इसमें क्या है, देखना जरा। सरस चौक गया। उसने जेब से जो चीज निकाली उसे देखकर शब्द भी हँसते हँसते लोटपोट हो गया। वह टिफ़िन का ढक्कन था जिसकी खोज में वह कब से बेचैन था। वह झेंप गया।

-" इसमें इतना हँसने की क्या बात है? भूल सभी से होती है।" शब्द की हँसी रुक नही रही थी। वह उसे चुप करते हुए साथ लेकर चला गया।

जब शब्द को स्कूल बस पर चढ़ाकर सरस वापस आया तो विधा को फ्रेश हो कर बाहर लॉन में बैठा पाया। वह समझ गया। चाय पीने का वक्त हो गया था। कभी वह वहीं बैठा चाय आने का इंतजार करता था। विधा चाय लाती थी। फिर दोनों बैठकर चाय पीते थे। पूरे दिन की प्लानिंग होती थी। गपशप होता था। चाय के साथ ही बातचीत भी समाप्त होती थी। विधा लंच तैयार करने में जुट जाती थी और वह अखबार के हेड लाइन्स देखकर दूसरे कामों में व्यस्त हो जाता था।

वह सीधे किचन चला आया। चाय बनाई और

टोस्ट सेक कर लॉन में बिछे सेंटर टेबल पर आ गया-" विधा डार्लिंग, चाया।" विधा ने यह देखकर राहत महसूस की कुछ देर पहले वाले झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन सरस के चेहरे से उड़नछू हो गया था उसकी जगह सरस की स्वाभाविक मुस्कान चेहरे पर आ विराजी थी।

बड़ी चुस्ती से सरस ने विधा के सामने एक प्लेट में टोस्ट और दो कप में चाय रखा और एक विजेता की तरह विधा की ओर देखा। एक पल के लिए विधा सरस की कामयाबी पर खुश तो हुई लेकिन दूसरे ही पल जले हुए टोस्ट और काली बदरंग चाय पर नजर पड़ते ही खुशी काफूर हो गई।

-" पियो पियो मेरी जान, तुम भी क्या याद करोगी! तुम्हारा पति कुकिंग में भी कितना दक्ष है।" सरस ने कप विधा की ओर बढ़ाते हुए कहा।

-" हाँ, क्यों नहीं पतिदेव, आपकी दक्षता मेरे सामने है।" कप पकड़ते हुए विधा ने कहा। उसके चेहरे से झांकते व्यंग्य को पकड़ नहीं पाया सरस। उसकी निगाह थोड़ी देर के लिए सड़क पर चली गई थी।

सरस ने अपने कप से एक सिप लेते हुए कहने ही जा रहा था- वाह चाय कि अचानक रुक गया। बेस्वाद की कसैली चाय ने उसके चेहरे का भूगोल बदल दिया था। उसने एक नजर विधा पर डाली। विधा निर्विकार भाव से चाय की आखरी घुट भरकर कप रख रही थी। सरस को आश्चर्य हुआ-"विधा, तुमने चाय पी ली। बड़ी फ़ास्ट। तुम तो चाय के एक एक घुट का मजा लेती हो।"

विधा हँसी को ओठों में दबाती हुई गंभीर दिखने की कोशिश कर रही थी। वह सरस को दुःख नहीं पहुँचाना चाहती थी। बोली-" अब मेरे पतिदेव ने इतनी सुंदर चाय बनाकर दी थी तो संवरण नहीं कर सकी, दो घुट में ही पी गई।" हालांकि नजर बचाकर चाय बगल में रखे हुए गमले में डाल चुकी थी।

सरस खुश नहीं हुआ। उसे पता था, विधा जबरदस्त व्यंग्य कर रही है। दूसरा अवसर होता और विधा सरस की प्रशंसा करती तो अबतक सरस उसे आलिंगनबद्ध कर चुम्बनों की बरसात कर चुका होता।

विधा जूठे बर्तन समेटकर जाने लगी तो सरस ने रोक लिया-" विधा, नहीं। मैं ले जाऊँगा। यह तुम्हारा काम नहीं। तुम तो बस स्कूल जाने की तैयारी करो और मैं चलता हूँ किचन। झटपट कुछ बना लूँ।"

विधा सोचने लगी- जो शख्स एक टोस्ट तक सेक नहीं सकता वह खाना क्या बनाएगा। सरस मना करने पर भी मानेगा नहीं। उसने ठान ली है कि घर का काम वह सम्हालेगा तो अब पीछे हटेगा नहीं। वह इसका निदान सोचने लगी। एक बहाना उसके दिमाग में आया-" सरस, आज लंच बनाने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हें बताना भूल गई थी, आज स्कूल में छोटी सी पार्टी है। मैं वहीं खा लूँगी। बचे तुम। तुम अकेले अपने लिए क्या बनाओगे? कैंटीन में खा लेना।"

-" कहती तो तुम ठीक हो। लेकिन फिर यह न कहना कि मैं घर के कामों से डर रहा हूँ। " सरस ने इतने भोलेपन से कहा कि विधा की हँसी छूट गई-" नहीं कहूँगी बाबा। मैं खुद तुम्हें मना कर रही हूँ।"

-"चलो, फिर ठीक है। थोड़ी देर और बैठते हैं।" सरस ने घड़ी पर नजर डाली।

-" हाँ, आज बाहर का क्या काम है?" विधा ने बैठते हुए पूछ लिया।

-" बस दो काम है आज। एक तो नगर निगम कार्यालय जाकर वाटर बिल निकलवाना है फिर पेमेंट करना है। दूसरा, आज हटिया है। गाँव से ताजी सब्जियाँ आती हैं। फ्रूट वैगरह भी ताजे मिल जाते हैं। लेती आना।" सरस ने विधा पर नजर डाली-" ले आओगी न? नहीं तो मैं ही ले आऊँगा।"

-" नहीं, नहीं। मेरा काम है। मैं कर लूँगी।" विधा कमजोर नहीं दिखना चाहती थी इसलिए दृढ़ता से कहा। फिर सरस और विधा दोनों एकसाथ उठ गए।

विधा का ध्यान भटकने के कारण आज पढ़ाने में उसका मन लग नहीं रह था। मस्तिष्क पर एक बोझ सा महसूस कर रही थी। वह बीच-बीच में घड़ी देखती थी और सिर झटक देती थी। लंच ब्रेक होते ही वह अपनी सहायक को जरूरी हिदायतें देकर स्कूल से निकल आई। सामने एक खाली रिक्शा दिखा। उस पर बैठ गई। नगर निगम कार्यालय चलना है कहकर उसने शरीर को ढीला छोड़ दिया और आँखें बंद कर लीं।

-" कहाँ चलना है, मेमसाहब?" रिक्शावाले के पूछने पर उसके होठों पर हल्की मुस्कान छा गई।

-" म्यूनिसिपलेटी ऑफिस चलो।" हिंदी नहीं आती आपको?

नगर निगम का दफ्तर किसी मरघट की तरह उदास था। विधा ने घड़ी पर नजर फिराई। लंच टाइम समाप्त हुए आधा घंटा बीत चुका था फिर भी.....। वह इधर उधर देखती हुई एक पुरानी पड़ी बेंच पर बैठ गई। गर्मी और उमस से वह परेशान हो गई थी। होठ सुख गए थे। बार-

बार हाथ से संवारने के बावजूद बाल बिखर जाते थे। उसकी स्थिति उस फूल की तरह हो गई थी जो धूप और गरम हवा के थपेड़े खाकर मुरझा जाता है।

आज विधा को अपनी कमजोरी का एहसास हो रहा था। सरस किस तरह उसके इर्दगिर्द ढाल बन कर खड़ा रहता है। हवा का एक झोंका भी नहीं लगने देता। वह तो उसके स्कूल टीचर बनने पर भी इंकार कर रहा था लेकिन उसके बच्चों को पढ़ाने के शौक के आगे नतमस्तक हो गया था। स्कूल जाना और घर आना एक रूटीन सा बन गया था उसके लिये जो इस कदर उबाऊ और बेकार नहीं था। इन सरकारी दफ्तरों की कार्य संस्कृति इतनी साड़ी-गली है, इसका आभास था उसे लेकिन प्रत्यक्ष का अनुभव अत्यंत कटु था। उसे याद नहीं पहले कब इतना उबाऊ पल आया था उसके जीवन में। उसकी आँखें भर आईं। बैठे-बैठे उसका शरीर दुखने लगा था। उसाँस भरकर वह उठाने ही जा रही थी कि सामने उसकी नगर पड गई। दूर उसे एक पतला दुबला व्यक्ति आता नजर आया।

वह एक पैर से पोलियोग्रस्त था। आँखें छोटी थीं और गाल पिचके हुए थे। क्रूरता उसके चेहरे पर स्थायी निवास बना ली थी। विधा को बैठा देखकर दूर से ही वह कुछ बोला जिसे विधा समझ नहीं सकी लेकिन उसका तेवर देखकर उसने अनुमान लगाया कि हुलिया से चपरासी सा दिखनेवाले इस आदमी को उसका आना नागवार गुजरा था। वह नजदीक आकर कुछ खरीखोटी सुनता कि एक सुंदर जवान औरत को सामने देखकर उसका तेवर बदल गया। सच है, कांटे भी सुंदरता देखकर पिघल जाते हैं।

-" मैडम , कुछ काम है आपको?" वह पिउन ही था जो आवाज को अपेक्षाकृत नम्र बना कर पूछ रहा था जबकि विधा को उसकी आवाज किसी मेडक सी गड़गड़ाती सी लगी।

-" वाटर टैक्स जमा कारवाना था।"

-" तिरपाठी बाबा आते ही होंगे। आप आराम से बैठ जाइए। " विधा उसके 'आराम से बैठने' वाली बात पर जलभुन गई लेकिन चेहरे की गंभीरता को बनाये रखा। वह सोच रही थी, सरस को रोज ऐसे माहौल में काम करवाना पड़ता होगा। कैसे झेल पाता होगा वह।

विधा सोचना छोड़कर सामने देखने लगी। मध्यम कद का एक व्यक्ति मंथर गति से आ रहा था। दोहरे काठ के उस अधेड़ के माथे पर चंदन कुमकुम का टीका देखकर विधा समझ गयी कि त्रिपाठी जी यही हैं। चेहरे पर अधपकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। बड़े- बड़े दाँतों के बीच पान की पिसाई चल रही थी जिसके कारण पिक ओठों के किनारे से टपक रहा था। कुल मिलाकर त्रिपाठी जी का व्यक्तित्व किसी सुंदर स्त्री को अप्रिय लगने के लिये पर्याप्त था। विधा को इसी व्यक्ति से काम था अतएव हाथ जोड़कर सम्मान देना ही था।

-" आप का क्या काम है?" मुँह में भर आये पिक को पिच्च से थूकते हुए त्रिपाठी जी ने पूछा और नजरों से विधा को आपादमस्तक टटोलने लगा। विधा थोड़ी सिकुड़ सी गई। त्रिपाठी जी के पिक फेंकने से जो वितृष्णा उत्पन्न हुई थी उसका निशान चेहरे से हटाते हुए विधा नम्र होकर बोली-" वाटर टैक्स जमा करना है। बिल भी निकलवाना है।"

-" आइए, आइए। हो जाएगा।" कहते हुए त्रिपाठी जी आगे बढ़ गए। पीछे- पीछे विधा भी चल पड़ी

अपने टेबल पर आकर त्रिपाठी जी ने बगल में रखे कंप्यूटर ऑन किया और पिउन को आवाज दी-" फेकन जी, जरा एक कुर्सी लाइए। धूल गर्दा बढ़िया से पोंछ दीजिएगा।"

कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए त्रिपाठी जी बोले-" आइए, आइए, बैठिए। बस दो मिनिट में हो जाएगा। " विधा बैठ गई लेकिन त्रिपाठी जी की चोर नजर ने जिस जगह को टटोलती सी दिखी उसे अच्छी तरह उसने खुद को ढक लिया। त्रिपाठी जी थोड़ा झेंप कर टेबल के

नीचे रखे बास्केट में पिच्च से पिक उगल दी। विधा के चेहरे पर एक क्षण के लिए घृणा दिख गया फिर वह संभल गई।

-" फेकन, अरे मैडम को पानी वानी पिलाओ भाई।" त्रिपाठी जी ने फेकन को पुकार कर कहा और खुद शरीर को बेवजह हिलाने डुलाने लगे-" ओह, आज तो गजबे उमस है भाई।" फिर विधा को संबोधित करते हुए बोले-" मैडम, आपको आज पहली बार ऑफिस में देख रहा हूँ। ऑफिस पहली बार आई हैं क्या?"

विधा को देर हो रही थी। हटिया से सब्जी भी खरीदनी थी। इधर त्रिपाठी जी बिना वजह देर लगा रहे थे। उसे पता था, त्रिपाठी जी उसके सान्निध्य सुख को शीघ्र छोड़ना नहीं चाह रहे थे। बीच बीच में नजर सेकने से भी वे बाज नहीं आ रहे थे। वह सब समझ रही थी। कोई बच्ची तो थी नहीं। क़िताबों द्वारा उसे मर्दों के स्त्री के प्रति छिछोरापन का पता था लेकिन अधेड़ त्रिपाठी जी जैसे चिपकू से एक दिन उसका पाला पड़ेगा, यह उसने कभी सोचा नहीं था। ऊबकर वह बार -बार कुछ कहना चाहती थी लेकिन कह नहीं पा रही थी। कहीं त्रिपाठी जी भड़क गए तो काम ही बिगड़ जाएगा इसलिए मन मसोस कर रह जाती थी।

त्रिपाठी जी किसी की मनोदशा का आकलन करने में घाघ थे खासकर स्त्रियों की मनोदशा अध्ययन में तो वे पुराने सिध्दहस्त थे। सामने बैठी सुंदर स्त्री को पहलू पर पहलू बदलते देख वे समझ गए थे कि शायद अब कोई विस्फोट हो जाएगा। इससे पहले कि कोई विस्फोट हो उन्होंने ऊँची आवाज में फेकन को पुकार कर कहा-" अरे फेकन, बहुत देर हुई भाई, मैडम को चाय-वाय पिलाओ।"

चाय लाने की बात सुनकर आखिर विधा के संयम का बांध टूट ही गया-" अंकल, चाय छोड़िए प्लीज। बहुत देर हो गई। बिल दे दीजिए ताकि टैक्स जमा कर सकूँ।"

अंकल- विधा के मुँख से निकले ये तीन शब्द त्रिशूल बनकर त्रिपाठी जी के कलेजे में सीधे जा धँसे। उनका आशिक मिजाज मन लहूलुहान हो गया। खिन्न मन से उन्होंने कमप्यूटर का बटन दबाया और बिल निकालकर विधा के सामने पटक दिया-" जाइये, बगल के एक रूम छोड़कर टैक्स जमा कर दीजिए।"

विधा ने झट बिल पर बिल्ली की तरह झपटी और इतनी तेजी से वहाँ से भागी मानो किसी कुत्ते से पीछा छुड़ाकर भाग रही हो।

टैक्स जमा करने के बाद विधा ने कलाई घड़ी देखी। निगम परिसर से बाहर आते ही एक टैम्पू दिख गया। उसे रोककर वह बैठ गई। वह सीधे सब्जी बाजार आकर टैम्पू से उतर गई। वह अभी हटिया में कदम रखी ही थी कि एक लड़का उसके कान के पास प्रणाम भाभी कहते हुए आगे बढ़ गया। विधा को बुरा लगा। वह उस लड़के की तरफ देखकर पहचानने की कोशिश कर ही रही थी कि एक आदमी से धक्का खा कर लड़खड़ा गई। वह कुछ बोलना चाह रही थी वह आदमी ढिठाई से बोलने लगा -" मैडम जी, जरा देखकर चला कीजिए। यह हटिया है। एक तो सकरा रास्ता और ऊपर से आप सकरे रास्ते पर खड़ा होकर इधर उधर देख रही हैं। धक्का तो लगेगा हीं।"

बोलकर वह आदमी चला गया। विधा चुप रही। गलती तो उसी की थी। वह हरी और ताजा सब्जी देखकर एक दुकान की ओर बढ़ी। अभी वह उस दुकान के पास पहुँचती कि उस दुकान के सामने वाला दुकानदार बोल उठा-" आइए मैडम जी, अभी अभी खेत से टूटकर आया है। ताजा ताजा बैगन है। मोटा, पतला, लंबा, छोटा जैसा बैगन आपको पसंद हो, ले जाइए। एक बार ले जाइयेगा तो बार बार मेरे पास आइयेगा।" एक उचटती सी नजर विधा ने उस दुकान की तरफ डाली। दुकानदार ने कहना जारी रखा-" उ हॉस्पिटल वाली रीमा मेंम बराबर मेरी दुकान से ही बैगन ले जाती हैं।"

विधा को लगा, सौ घड़ा पानी पड़ गया उसके ऊपर। जैसे बीच बाजार में उसे नंगा कर दिया

हो किसी ने। चोर नजरों से उसने देख। ग्राहक, दुकानदार सब हँसी ओठों में दबाए उसे ही देख रहे थे। रीमा मेम जिसका नाम सब्जीवाला ले रहा था, वह स्थानीय हॉस्पिटल में नर्स थी। वैधव्य जीवन बिताते हुए वर्षों से काम कर रही थी। कई तरह की अवांछित बातें उससे जुड़ी हुई थीं जिसके कारण वह पूरे क्षेत्र में चर्चित थीं। वह बदनाम हो गई थी।

विधा उस सब्जीवाले की बातें सुना अनसुना करती हुई किसी दूसरी सब्जी दुकान की तरफ मुड़ गई। वह झुक कर भिंडी चुनने लगी तभी अचानक हवा का तेज झोंक आ गया। उसके सीने से आँचल हट गया। आँचल ठीक करते समय उसकी नजर दुकानदार के ठीक बगल में बैठे एक लड़के पर चली गई। वह आँखें फाड़कर विधा के उभारों को देख रहा था। उसकी कुत्सित आँखें निकल कर मानो विधा के सीने से चिपक गयी थीं। विधा असहज हो उठी। आँचल ठीक करती हुई वह खड़ी ही हुई थी कि ठीक उसके पीछे खड़े एक ग्राहक के अग्र भाग से टकरा गई।

वह ग्राहक 'सॉरी,' कहते हुए बगल हट कर सब्जियों को देखने लगा। उसके लिए तो जैसे कुछ हुआ ही नहीं था लेकिन विधा तो कट कर रह गई थी। उसे रोना आ गया। बड़ी- बड़ी आंखों के कोर भींग गए। मन मसोस कर रह गई। आखिर अपने पैरों पर उसी ने कुल्हाड़ी मारी थी।

सब्जी लेकर जैसे तैसे वह घर आ गई। सैकड़ों तिलचट्टे मानो उसकी देह पर रेंग रहे थे। उसे उबकाई हो आई थी। वह जल्दी से जल्दी उन तिलचट्टों को धो देना चाहती थी। वह सीधे बाथरूम में घुस गई। पूरे शरीर को अच्छी तरह रगड़ -रगड़ कर धोने लगी। पूरी तरह फ्रेश होने के बाद वह बाहर आई। सरस और शब्द ड्राइंग रूम में बैठे चुहल कर रहे थे। सोफे पर बैठकर विधा ने आँखें बंद कर लीं। वह अभी भी त्रिपाठी और दूसरे लोगों की कलुषित आँखों के वार से खुद को बचाने की कोशिश कर रही थी। शब्द दौड़ कर माँ के गले से लिपट गया था। सरस भी बगल में खड़े होकर उसका सिर सहला रहा था। विधा मानो सोते से जगी। चैतन्य होकर वह शब्द से दुलार करने लगी।

-" बहुत थक गई हो न ,विधा।" सरस अभी भी उसके सिर पर हाथ फेर रहा था-" मैं अभी गरमा गरम कॉफी बनाकर लाता हूँ, जानेमन। सारी थकान चुटकियों में रफूचक्कर हो जाएगी।"

सरस का विधा के माथे पर हाथ फेरना विधा के लिये राहत और सुकून दे रहा था। उसके तीक्ष्ण और भयाक्रांत करने वाले पिछले अनुभवों की जलन पर जैसे सरस दवा का लेप लगा रहा था। धीरे -धीरे जलन खत्म होने और ठंडक पहुँचने का एहसास कितना सुखदायक था! विधा तो मानो मदहोश ही हो गयी थी।

कॉफी बनाने का ख्याल आया तो वह अचानक उठकर खड़ी हुई। डिसबैलेंस होने पर वह लड़खड़ा कर गिरने गिरने को हो गई। सरस सामने ही था। उसने थाम लिया-" विधा क्या हुआ? तुम ठीक तो हो।" वह सरस के आगोश में सटकर खड़ी हो गई-" हाँ, मैं ठीक हूँ। तुम्हारे आगोश के सुरक्षित घेरे में मुझे हो भी क्या सकता है ? "

सरस का घेरा थोड़ा और कस गया। विधा कसमसा उठी-" छोड़ो, बाहर देखो, शाम रात की गहराई में समाने को आतुर है। मैं कॉफी बनाकर लाती हूँ।"

-" लेकिन कॉफी तो मैं बनाऊँगा। यह मेरा काम है। " सरस किचेन की ओर जाने लगा। विधा सरस को पकड़ कर उससे लिपट गई- " नहीं। " इसके आगे वह नहीं बोल सकी। उसका गला भर आया। सरस एकदम से गंभीर हो गया। उसने विधा के चेहरे को दोनों हथेलियों के बीच में लेकर थोड़ा ऊपर उठाया। विधा की आंखों में आँसुओं का जैसे सैलाब उमड़ आया हो। टप..टप करके मोटी धार बनकर चुने लगी।

-" क्या हुआ विधा? मेरी विधा से किसी ने बद्तमीजी की है क्या?" वह विधा के कपोलों को चूम लिया। आँखों से बह रहे आँसुओं को पोछने लगा।"

-" कुछ नहीं हुआ। बस कल से तुम अपने काम सम्हालोगे । बाहर की दुनिया तुम देखो और मैं घर सम्हालूँगी। "

-" बस, एक ही दिन में चांद तारे दिख गए डार्लिंग।"

-" चांद तारे के अलावे और क्या क्या दिखे वो सब बताऊँगी बाद में लेकिन अभी सुन लो मेरे पाकशास्त्री जी, आपकी हाथों

की बेरंग बेस्वाद की चाय और जले हुए टोस्ट मैं रोज- रोज बर्दास्त नहीं कर सकती।" विधा किचेन में कॉफी बनाती हुई बोली।

सरस विधा की बातें सुन किचेन की ओर देखने लगा। कुछ देर बाद विधा कॉफी और नमकीन लेकर आ गई। कॉफी की चुस्कियों के बीच विधा दिनभर की घटनाओं को विस्तार से बताती रही। बात खत्म होते ही सरस ने विधा को आलिंगन में आबद्ध कर लिया। अंदाज ऐसा था मानो अब वह कभी मुक्त नहीं करेगा विधा को। #

आज महसूस होती कबीर की अनुपस्थिति

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

आज सभ्यता के अनगिनत पड़ाव तय करने तथा शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान की नई-नई उचाईयों को छूने के बाद भी हम उन कुवृत्तियों के अंधकूप से पूर्णतः बाहर नहीं आ पाए हैं, जिनसे निज़ात पाने के लिए हमारे संतों-महात्माओं ने समय-समय पर हमें उपदेशित किया है. इससे अधिक दुःखद तथ्य तो यह है कि आज हमारे बीच ऐसे समाज -सुधारकोंक और पथ-प्रदर्शकों का अभाव है जो संत कबीर की तरह समाज में धर्म के नाम पल्लवित-पुष्पित होते अधर्म के व्यापार को बेनकाब कर सकें.

संत कबीर वह तारा थे जो तत्कालीन समाज रूपी आकाश में व्याप्त धार्मिक कर्मकांडो, अंधविश्वासों, कुरीतियों और आडंबरों के घने अंधकार को दूर करने के लिए आजीवन संघर्ष करते रहा । वे अपनी इस मुहिम को अंजाम तक पहुंचाने के लिए समाज के समक्ष एक अटल चुनौती थे, इसमें संदेह नहीं.

आज की धर्मनिरपेक्षता कबीर का एकेश्वरवाद ही है. आज की बहुधर्मिता, बहुदेववाद के कारण समाज में आये दिन दंगे-फसाद होते

हैं. दो अलग-अलग धर्मों की बात क्या, एक धर्म के ही अनुयायियों में आज बड़े पैमाने पर मतान्तर अपने चरम पर देखा जाता है. सामाजिक सामंजस्य के पक्षधर होने के कारण ही कवीरदास ने भक्ति के निर्गुण-मार्ग का चयन किया था. वे आजीवन दोनों पक्षों के मध्य सामंजस्य-सेतु के लिए ही प्रयासरत थे. यही कारण है कि वे समाज में राम के माध्यम से आध्यात्मिक उत्कर्ष की अपेक्षा मनुष्यत्व का जागरण और विकास चाहते थे क्योंकि सभी मानव क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, क्या सिख क्या इसाई पहले मनुष्य है, वह मनुष्य जो विधाता की अनुपम कृति है और जो ज्ञान और समझ में ईश्वर जैसा नहीं तो देवतुल्य अवश्य है. मानवी समता के समर्थक संत कबीर को वर्णव्यवस्था शूल-सी चुभती थी. उनका विचार था कि जब सभी का सिर्जनहार एक है तो ऊँच-नीच, जाति -पांति, स्पृश्य-अस्पृश्य की सामाजिक व्यवस्था क्यों. उस संतमना के हिसाब से उसी पञ्चतत्वों निर्मित होने के कारण सभी मनुष्य समान हैं.

कबीर की सामाजिक परिकल्पना में शोषक

और शोषित का पृथक-पृथक रूप नहीं आता था, सभी सामान हैं - न कोई शोषक है न कोई शोषित. 'सांईं ते सब होत है, बन्दे ते कछु नाहिं" कहकर उन्होंने ऐसे लोगों कि आलोचना की जो अपने को ईश्वर समझकर समाज में दबदबा बनाये रखने कि लिए अपने थोथे प्रभाव का प्रदर्शन करते हैं. वे श्रमजीवी वर्ग के प्रति जितने उदार थे, शोषक वर्ग के प्रति उतने ही कठोर। वे शोषकों को ईश्वर भय दिखाते हुए शोषण से बाज़ आने लिए आगाह भी किया :

"दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी खाल,
मुए खाल की साँस से सार भसम होई जाय"

बात ध्यान देने की है कि कबीर दुर्बल की खाल को मोटी क्यों कहते हैं. वह शायद इसलिए कि अनवरत धूप में परिश्रम करने के कारण उसकी चमड़ी अपनी कोमलता खो देती है. वह उतनी मुलायम नहीं रह जाती जितनी छाँह में बैठ कर हुक्म चलाने वाले शोषकों की. कवीरदास के युग की ही तरह हमारे युग में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो चाहे ठेकेदारों के रूप में या काम करने वाले मालिकों के रूप में मज़दूरों को तृतीय दर्जे का मनुष्य समझकर उनके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते हैं. कवीर उन्हें आगाह करते हैं :

"कविता घास न निंदिए जो पाऊं तर होय
उड़ि परै जो आंख में खड़ा दुहेला होय ।"

आज नगरों की पोश कालोनियों में अपने सुन्दर और भव्य कोठियों के देखकर लोग फूले नहीं समाते, कोई बात नहीं, पर मकानों और पैसों को लेकर अपने और निर्धनों के बीच मानसिक लकीर खींच कर रखना सामाजिक अन्याय है. आज अनेकों प्रकार की आर्थिक विषमताएं दृष्टिगत होती हैं. इस सत्य को भी हवा में उड़ा दिया जाता है कि गर्वियों के वैरी ईश्वर की कुदृष्टि एक पल में उनके महल को धराशाई कर देगी, और तब उनकी ही नहीं, महल की भी शॉन मिट्टी में मिल जाएगी :

"कविरा गरब न कीजिए ऊंचे देखि अवास
आजकाल भूईं लोटड़ा ऊपर जाने घास।

(उपर्युक्त लेख मेरी मौलिक रचना है. इसे प्रकाशन के लिए किसी भी समाचार पत्र/पत्रिका में नहीं भेजा गया है)

<><><>

सी-222, पश्चिमी विनोद्नगर, दिल्ली-92
9717769418

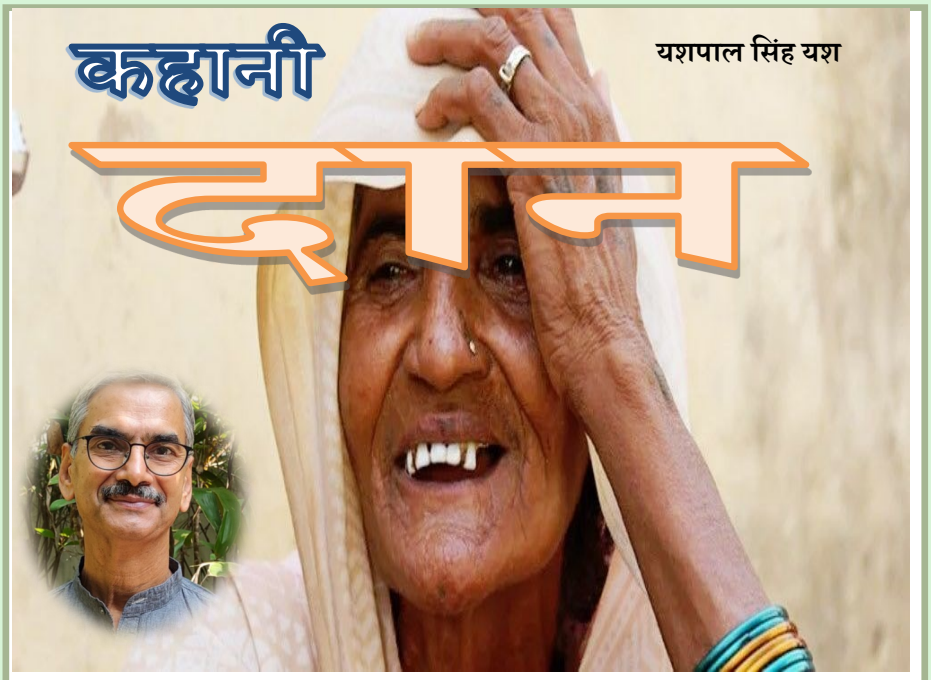

यशपाल सिंह यश

रवि बाबू अभी पाँच वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं। वो अपनी सेहत, अपने खान-पान, और अपनी दिनचर्या के प्रति हमेशा जागरूक रहे हैं। सच पूछिए तो रिटायरमेंट की उम्र नहीं लगती उनकी। प्रतिदिन सुबह घूमने जाना उनकी आदतों में सम्मिलित है। जब से सेवानिवृत्त हुए हैं तब से उस दिनचर्या में शाम की सैर भी सम्मिलित हो गई है। उनकी दिनचर्या में जो एक और चीज शामिल है वह है डायरी लिखना। उनके घर से रेलवे स्टेशन लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर है। अच्छी साफ सड़क है इसलिए रोज सुबह-शाम स्टेशन तक जाना और आना उनकी नियमित दिनचर्या है।

आते-जाते उनकी नज़र अक्सर एक पचास-पचपन वर्ष की महिला पर पड़ जाती है जिसने हाल ही में सड़क के किनारे फुटपाथ पर अपना आशियाना बना लिया है। आशियाना क्या, बस कुछ पुरानी साड़ियों को सड़क से सटे हुए स्कूल की दीवार में किसी तरह अटकाकर उसने अपने लिए एक सर छुपाने और खुद को छुपाने की जगह बना ली है। सड़क से गुजरते हुए लोगों से उसको कई बार कुछ बोलते हुए भी देखा है। उसका व्यवहार थोड़ा असामान्य अवश्य है किन्तु वो पागल तो बिलकुल नहीं लगती। कभी वह महिला अपने इस घर के बाहर दिखाई देती है तो कभी नहीं। सरकारी कॉलोनियों में अपना जीवन व्यतीत करने वाले रवि बाबू सड़क किनारे अतिक्रमण के हमेशा विरूद्ध रहें हैं, मगर पैदल चलने वालों के लिए बनी फुटपाथ पर इस महिला के अतिक्रमण को देखकर उनके मन में कभी वैसा प्रश्न नहीं उठता। बल्कि वो सोचते हैं कि साड़ियों से बनी छत वाले इस घर में यह महिला अपने आप को बरसात से कैसे बचाती होगी। उनकी इस जिज्ञासा का उत्तर उन्हें एक दिन मिल जाता है जब वो एक सुबह सैर से वापस लौटते हुए देखते हैं कि वह महिला रात में हुई बारिश से भीगे कपड़ों को आग जलाकर सुखा रही है। लकड़ियां भी शायद बारिश से कुछ गीली हो गई होंगी इसलिए धुआँ भी काफी उठ रहा है। पर्यावरण को लेकर अक्सर मुखर रहने वाले रवि बाबू को इस धुएँ में आज बिगड़ता पर्यावरण नहीं बल्कि उस महिला की मजबूरी, उसकी सुरक्षा दिखाई देती है। आज अपनी डायरी में वो लिखते हैं, 'आग भी कितने काम की चीज है ! विशेषकर उनके लिए जो खुले आसमान के नीचे रात बिताने को मजबूर हैं। क्या मैं कुछ कर सकता हूँ इस महिला के लिए? कम से कम उसे अपने घर की छत पर डालने के लिए एक पॉलिथीन की शीट तो लाकर दे ही

(पृष्ठ 31 का शेष....)

सकता हूँ जो उसे बारिश से बचा सके। इस महिला को कभी किसी से कुछ मांगते भी नहीं देखा। पता नहीं इसका काम कैसे चलता होगा। हो सकता है वह स्टेशन के पास जाकर भीख मांगती हो। खैर जो भी हो वह गरीब और जरूरतमंद तो है ही। हो सकता है कि पॉलीथीन की चादर से अधिक जरूरत उसे किसी और वस्तु की हो। इसलिए पैसा देना ही ठीक रहेगा।'

श्राद्ध के दिन चल रहे हैं। आज रवि बाबू के पिताजी का श्राद्ध है। रवि बाबू धार्मिक कर्मकांडों के ज्यादा पक्षधर नहीं हैं। उनका मानना है कि बुजुर्गों का ध्यान उनके जीते जी रखा जाए न कि उनके मरने के बाद उन्हें जल चढ़ाया जाए। इसलिए आज जब पत्नी कहती है कि घर में कुछ करने के बजाय क्यों न पड़ोस के मंदिर में जाकर कुछ दान कर दिया जाए तो वो इसे सहज स्वीकार कर लेते हैं। मंदिर के दान-पात्र में पत्नी एक पाँच सौ रुपये का नोट डालती है तो रवि बाबू को अचानक उस महिला का खयाल आ जाता है। मंदिर से बाहर निकलकर वो पत्नी से कहते हैं कि चलो स्टेशन की तरफ चलते हैं। रास्ते में उस महिला के आशियाने के पास जाकर रुकने से पहले वो पत्नी को उस महिला की परिस्थिति के बारे में बताते हुए कहते हैं कि इसको भी दो सौ रुपये दे देते हैं। मगर वो महिला तो दिखाई नहीं दे रही। पत्नी उस साड़ियों से बने घर का कपडा हटाकर देखती है तो महिला अंदर भी नहीं दिखाई देती। शायद कहीं गई होगी। रवि बाबू वापस घर लौट आते हैं लेकिन मन में उस महिला की सहायता करने की इच्छा बनी रहती है। अगले दिन जब वो सुबह सैर को निकलते हैं तो कुछ रुपये अपनी जेब में रख लेते हैं। सैर से वापस लौटते हुए वो देखते हैं कि वह महिला अपने उस घर के सामने बैठी हुई कुछ कर रही है। वो जा कर उसके पास रुकते हैं और उसे दो सौ रुपये का एक नोट देने के लिए, शांत भाव से, हाथ बढ़ाते हैं। मगर सहायता करने के उनके इस प्रयास पर महिला की प्रतिक्रिया उन्हें अचंभित कर देती है। उसकी आँखों में जो भाव दिखाई देता है वह उनकी समझ से परे है। मगर एक बात तय है कि यह भाव उस धन्यवाद या कृतज्ञता का तो कतई नहीं है जो कोई भी दान-दाता, दान लेने वालों की आँखों में, देखना चाहता है। धन्यवाद तो दूर वह तो उलटे प्रश्न करती है, 'यह क्यों दे रहे हो' 'रख लीजिए, आपके काम आएंगे। वैसे ही दे रहा हूं।'

'क्यों रख लूँ ? मैं तो नहीं रखूंगी दो सौ रुपये।'

रवि बाबू की कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहें लेकिन,उसके द्वारा बोले गए अंतिम शब्दों का सहारा लेते हुए, कहते हैं,

'फिर कितने रखोगी? दस रख लोगी?

उसने कहा, 'हाँ दस रख लूंगी।'

रवि बाबू वापस जेब में हाथ डालते हैं और एक बीस का नोट निकालकर महिला की ओर बढ़ा देते हैं।

'यह रख लोगी'

'हाँ यह रख लूंगी।' यह कहकर वह बीस का नोट पकड़ लेती है।

रवि बाबू चलने को होते हैं लेकिन फिर रुक कर महिला से पूछते हैं,

'आपने बीस रुपये ले लिए तो फिर दो सौ रुपये लेने से इंकार क्यों किया?'

महिला आकाश की ओर हाथ उठाकर जवाब देती है, 'दो सौ रुपये के लिए ऊपर जवाब देना पड़ेगा।'

रवि बाबू की समझ में नहीं आता है कि इसका क्या अर्थ लगाया जाए। वो डायरी में लिखते हैं 'क्या यह इस महिला के आत्मसम्मान की बात है कि वह बदले में बिना कुछ कार्य किए हुए इतने पैसे नहीं लेना चाहती। हाँ दस-बीस रुपये की मदद की बात दूसरी है। इसको वह गलत नहीं मानती।' उस महिला के प्रति एक नई श्रद्धा उनके मन में पैदा हो जाती है और वो आगे लिखते हैं 'आज के इस दौर में जब आदमी का ईमान कौड़ियों के भाव बिक रहा है एक गरीब आदमी कैसे अपने आत्मसम्मान के प्रति इतना जागरूक हो सकता है। मुझे आज भी स्मरण है जब मैंने एक बार फुटपाथ पर एक केले बेचने वाले से आठ रुपये के दो केले खरीदे थे और उसे दस का नोट दिया था। उसके पास खुले पैसे नहीं थे लौटाने के लिए। मैंने उससे कहा कि अगर उसके पास वापस करने के लिए खुले दो रुपये नहीं है तो वह दस का नोट रख ले। मगर उस केले वाले ने मेरे दो रुपये के बदले मुझे चार रुपये की कीमत वाला एक अतिरिक्त केला थमा कर यह सोचने पर मजबूर कर दिया था कि इस केले वाले ने मेरे दो रुपये नहीं रखे बल्कि उल्टा दो रुपये का कर्ज मुझ पर चढ़ा दिया।' रवि बाबू कविताएं भी लिखते हैं और उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा था,

'यहाँ हर चीज में तेरा शिवाला देखता हूँ
इसी दुनिया को अपनी पाठशाला देखता हूँ
सड़क पर खोमचे से बेचने वालों में अक्सर
शख्स दिलदार औ ईमान वाला देखता हूं'

समय बीतता है। कुछ दिन बाद रवि बाबू को शहर से कहीं बाहर जाना पड़ता है। वापसी में स्टेशन से रात के ग्यारह बजे एक रिक्शा पकड़ कर घर लौट रहे होते हैं तो उनकी नजर आदतन उस महिला के निवास पर पड़ती है और वो देखते हैं कि वहां एक युवक मोटर साइकिल रोक कर उस महिला से कुछ कह रहा है। युवक थोड़ा नशे में लग रहा है। महिला उसे जोर-जोर से कह रही है, 'तेरे घर में मां बहन नहीं है क्या ? चल भाग यहां से, वरना.....।'

युवक मोटर साइकिल स्टार्ट करके रवाना हो जाता है। रवि बाबू को सब परिदृश्य समझ आ जाता है। साथ ही उस महिला द्वारा वह दो सौ रुपये लेने से इंकार करने वाला दृश्य भी उनकी आँखों के सामने उतर आता है। घर पहुंच कर वो अपनी डायरी में लिखते हैं,

'जो भाव मैं उस दिन इस महिला की आंखों में नहीं पढ़ पाया था, क्या वो किसी आशंका का भाव था? क्या मैं ऐसा दीखता हूँ? हो ही सकता

(शेष पृष्ठ 33 पर....)

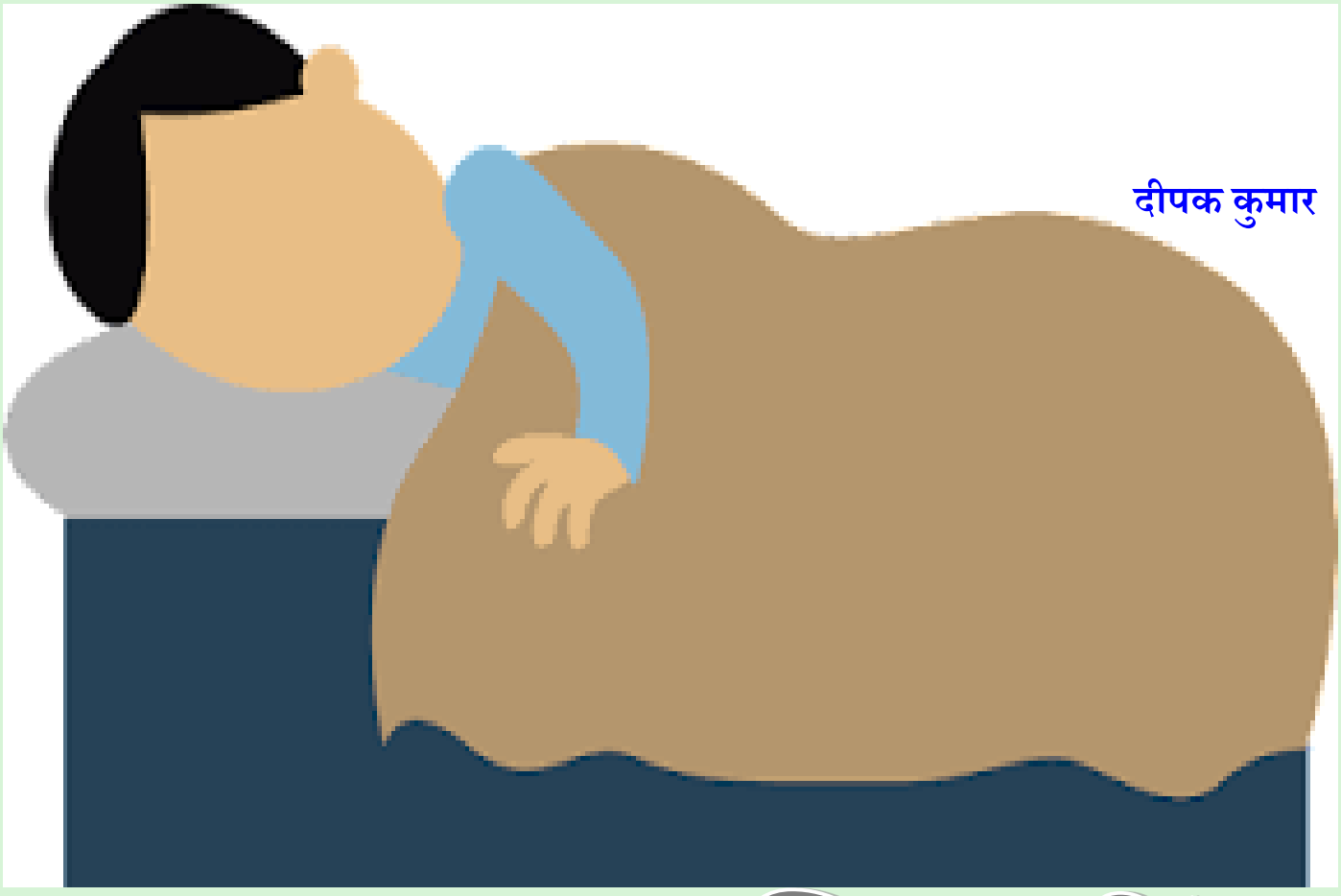

दीपक कुमार

इतवार की नींद

अंगरू ने मंगरू से कहा- "जम्हाई काहे ले रहे हो? आज तो थोड़ा बतिया लो, वैसे भी हम साथ होकर भी नहीं होते। हर पल, हर घड़ी हम साथ होते हैं, साथ खाते हैं, साथ पीते हैं, साथ जुतते हैं और साथ ही पैना की मार झेलते हैं, फिर भी हम साथ नहीं होते। एक दूसरे का दर्द बांट नहीं पाते, एक दूसरे से दिल का हाल कह नहीं पाते, बस देखते हैं एक दूसरे को मूक और बधिर होकर।"

मंगरू बोला- "आखिर उपाय क्या है? गुलामी में पैदा हुए, गुलामी में मर जाएंगे। एक दूसरे का हाल हम जानते ही हैं, फिर बतियाने सतियाने से फायदा क्या? चुपचाप अपने हिस्से का लेहन खाओ और जुआठ में बंधकर जुतते रहो।"

अंगरू बोला- "लेकिन कल तो इतवार की छुट्टी है न, आज थोड़ी मस्ती कर लेते हैं। सुबह जल्दी उठने का टेंशन नहीं है न।"

मंगरू ने जम्हाई ली। बोला- "भाई कुछ कह नहीं सकते, आजकल आदमी सारा नियम कानून ताक पर रखकर चलता है, उसे हमारी कहां चिंता?"

अंगरू ने असहमती जताई- " अपना मालिक वैसा नहीं है, खेत बिगड़ जाए तो बिगड़े मगर वह इतवार को हल नहीं उठाएगा। कल ही दूसरे गांव का एक आदमी आया था, अपनी जुताई के लिए हम-दोनों में से एक क़ो मांग रहा था इतवार के लिए। मालिक ने साफ मना कर दिया। कह रहा था इतवार की जोताई में बैलों की टांग कट जाती है।"

मंगरू हंसा- "हा हा हा मालिक को हमारी नहीं अपने आराम की फिकर होगी।"

अंगरू भडका- " यार तुम हमेशा गलत ही काहे सोचते हो? उधर देखो मालिक खुद खरहरे खटिया पर लेटा है, मच्छर भिनभिना रहे हैं लेकिन हमारी सुविधा के लिए नीचे पुआल बिछा रखा है, धुंआ कर रखा है ताकि हम आराम से सो सकें।"

मंगरू थोड़ा नरम हुआ। बोला- "शायद ठीक ही कह रहे हो, एक बार मुझे बुखार लगी थी तो बेचारा परेशान हो गया था। अपने हाथों से मुझे रोटी खिलाता था। "

अंगरू बोला- "और जब मेरी टांग छिल गई थी तो अपने हाथों से तेल लगाता था। यार कुल मिला कर मालिक अपना दयालू है।"

मंगरू ने फिर उपदेश दिया- " जैसा भी हो, हमारे दिन अब लदने वाले हैं और सच कहो तो मुक्ति भी मिलने वाली है। देख रहे हो न आजकल खेती के लिए एक से एक मशीन आ रही है। दूसरे लोग तो कब का मशीनी खेती शुरू कर चुके हैं मगर हमारा मालिक है कि अब भी हमें रगड़े जा रहा है।"

अंगरू बोला- " भाई जबतक जुतोगे तबतक जिओगे। आजकल जो जुतते नहीं वो कसाई के हाथ कटते हैं।"

मंगरू जुगाली करते हुए बोला- " ससुरी ऐसी जिंदगी से तो मर जाना ही बेहतर है। अच्छा चल अंगरू एक कथा सुना। कथा सुनते-सुनते

अच्छी नींद आ जाती है। जब मैं छोटा था तो मां सुनाती थी। मन तो करता था कि मां की गोद में सो जाऊं लेकिन वो हमारा खुसट मालिक मुझे दूर खूंटे से बांधकर रखता था। मेरी मां मेरी तरफ देखती थी एकटक और उसकी आंखों से कथा निकलकर मेरे कानों द्वारा दिल तक पहुंचती रहती थी।"

मंगरू की बात सुनकर अंगरू भी बचपन में चला गया। बोला- "अच्छा तो सुन, बचपन की एक बात बताता हूं। हम जहां रहते थे, वहां मालिक के पास बहुत सी गायें थी। जब किसी को बछिया होती थी, मालिक बहुत खुश होता था और जब हमारे जैसे लौंडे पैदा होते थे तो ससुरा मुंह बना लेता था सुथनी जैसा।"

मंगरू ने बीच में टोका- " यार ये आदमी भी अजीब टाइप का जानवर है न! जब खुद के बेटा होने पर खुश होता है और अपनी गाय के बेटा होने पर रोता है। तब तो उसे बछिया चाहिए होती है और अपनी बेटी होने पर मातम करता है। ये बात आजतक समझ नहीं आई।"

अंगरू ने कहा- "आगे की कहानी तो सुन। जब हम छोटे थे, खूंटे में बंधे छटपटाते रहते थे और सूरज के डूबने का इंतजार करते थे। अंधेरा होते ही एक आदमी आता था और हमारी मां के थान को जोर-जोर से खिंचता था और दूध की धार फूट पड़ती थी। दिन भर की भूख और प्यास से तड़पते हम बच्चों को अंत में छोड़ा जाता था तो दौड़कर अपनी-अपनी मां के थान से चिपक जाते थे। पर हाय रे नसीब! दो-चार कुल्ला के बाद ही आदमी हमें जबरन खींच कर वापस खूंटे से बांध देता था। हम तो तड़पते ही थे, हमारी मां भी मचल जाती थी। एक दिन ऐसा हुआ कि हममें से एक बच्चा मर गया। उसकी मां रो रही थी, खाना तक नहीं खायी और सदमे की वजह से उसका दूध भी बंद हो गया। लेकिन आदमी तो आदमी ठहरा, उस बच्चे की खाल में भूसा भरके उसकी मां के सामने लाया गया ताकि उसे भरम हो कि मेरा बेटा जिंदा है। उसकी बेचारी और दुखी मां सब समझती थी और कहना चाहती थी कि अरे वो मनुष्यों मेरा खून तक पी जाओ लेकिन मेरी ममता का उपहास तो मत करो। मेरे बच्चे की खाल में भूसा भरके तुम मुझे मूर्ख बनाना चाहते हो सिर्फ इसलिए कि मेरा दूध आता रहे तो आओ मैं तुम्हें अपना लहू तक पिलाने को तैयार हूं।"

बात से बात निकलती है। एक कहानी मंगरू के पास भी थी। अब उसने कहना शुरू किया- "मैं जब जवानी की दहलीज पर कदम रख ही रहा था कि प्रेम उबाल मारने लगा था। हमारे मालिक के पास एक सुंदर सी बछिया थी। चाहती तो वो भी थी मुझे लेकिन कह नहीं पाती थी और मैंने जब जब कहना चाहा, मुंह पर नकाब की वजह से कह नहीं पाया और सारी प्रेम कहानियों की तरह हमारी कहानी में भी त्रासदी आ गई। मालिक ने एक दिन मुझे बेच दिया और वहां मेरे अंडकोष को कुचलकर हमेशा-हमेशा के लिए मेरी जवानी को जला दिया गया। काश कि हम कनकटा सांड होते।"

अंगरू खर्राटें भरने लगा था, थोड़ी देर जुगाली करने के बाद मंगरू भी सो गया। सुबह उसके कानों में कुछ आवाजें आ रही थीं- "डाक्टर साहब पता नहीं दोनों बैलों को हुआ क्या है, दस बज गये अभी तक उठे नहीं। चेक कीजिए, कुछ हुआ तो नहीं इनको, आजतक तो कभी इतनी देर तक नहीं लेटे। कुछ कीजिए डाक्टर साहब ये ठीक न हुए तो मेरी बड़ी पूंजी डूब जाएगी।"

अंगरू- मंगरू दोनों सुन रहे थे पर इतवार की नींद से उठने का मन नहीं हो रहा था।

(पृष्ठ 32 का शेष)

है। आखिर किसी के चेहरे पर तो लिखा नहीं है कि वह शरीफ आदमी है और उस पर विश्वास किया जाना चाहिए। हर अनजान व्यक्ति को संदेह की दृष्टि से देखना किसी भी अकेली महिला के लिए एक आवश्यक हथियार है। तो क्या मुझसे कुछ गलती हुई? क्या इसीलिए कहा जाता है कि दान देते हुए दान लेने वाले की पात्रता देखनी चाहिए? अगर वह फुटपाथ पर रात काटती महिला दान के लिए सुपात्र नहीं है तो फिर सुपात्र किसे कहेंगे? क्या पात्रता का यह अर्थ है कि किसी व्यक्ति को उसकी अपेक्षा से ज्यादा दान नहीं देना चाहिए? कॉलेज के समय में एक फिल्म देखी थी जिसमें फिल्म का नायक सर्दी में ठिठुरते एक भिखारी को अपना कोट उतारकर दे देता है। फिल्म के अंत में जायदाद पर हक की वजह से नायक को पागल ठहराने के लिए अदालत में मुकदमा चलता है। वही भिखारी अदालत में उसके पागल होने के पक्ष में गवाही देता है और उसका सबूत बनता है ठिठुरती रात में भिखारी को दिया गया वही कोट। क्या कोई ठीक-ठाक व्यक्ति यूँ अपना कोट उतारकर देता है? भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि उचित स्थान और उचित समय पर योग्य व्यक्ति को बिना किसी कामना के दिया गया दान ही सात्विक दान होता है? दान देते हुए मेरी तो कोई भी व्यक्तिगत कामना नहीं थी। तो क्या मेरा तरीका ठीक नहीं था? क्या दान के लिए दान देने का सही माध्यम चुनना भी महत्वपूर्ण है? अगर मेरी जगह मेरी पत्नी उस महिला को दो सौ रुपए दान देती तो क्या वह स्वीकार कर लेती या उसे भी यही कहती कि ऊपर हिसाब देना पड़ेगा?' यह प्रश्न पाठकों के लिए भी है।

आज पिंकी का जन्मदिन है पूरा घर रोशनी से जगमगा रहा है घर में शोर- शराबा, हंसी- खुशी का माहोल है. चारों तरफ खिलाने के आवाज़ गुज़ रहीं थी पर पिंकी इन सभी शोर- शराबों से दूर एक कोने में बैठ किसी का इन्तजार कर रहीं थी. मानो उसे भी किसी बात में कोई रूचि नहीं है. उसकी माँ और बाबा ने कई बार उसे केक काटने बुलाया। और उसके दोस्तों के साथ खेलने को कहाँ पर वहाँ वही बैठीं रहीं और कब उसका आँखें लग गई पता ही नहीं चला। पिंकी अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के एक छोटे से गाँव डिग्लीपूर में अपने माता-पिता के साथ रहतीं थीं। उसके माँ स्कूल शिक्षिका और पिता इंजीनियर थे। दोनों ही उससे बहुत प्यार करते थे पर उनके पास उसे देने के लिए समय की कमी थी।

ऊपर से पिता की शराब पीने की आदत के कारण धर में लड़ाई- झगड़े, तनाव का रहता था । जिससे वह हर वक़्त अपने आप को अकेला अनुभव करतीं थीं। पिंकी भी उदास, डरी सहमी रहतीं थीं. न तो वो ज्यादा किसी से बात करतीं थीं न ही दोस्तों के साथ खेलती थी।

सुबह जब उसकी आँखें खोली तो वहाँ सबसे पहले बोलीं...

माँ- दादी आ गई क्या? मेरी जन्मदिन का तोहफा लेकर आई हैं क्या?

माँ के कुछ बोलने से पहले ही...

दादी- हाँ ले कर आई हूँ। बाहर जा के देख, तेरा इंतजार कर रहा है और तू तो, कब से सो रहा है।

मानों, पिंकी के पैरों में पंख लग गई और वह भाग कर बाहर चलीं गई।

पिंकी बोलीं- दादी माँ आप कितनी अच्छी हो।

बकरी के बच्चे की माँ को कुछ दिन पहले ही दादी ने एक आदमी को बेच दिया था क्योंकि दादी की भी उर्म हो गई थी, तो उनसे बकरी की देखभाल नहीं होती इसलिए उन्होंने उसकी माँ को बेच दिया और उसके नवजात बच्चे को अपने नातिन के लिए लाई। पिंकी पूरा दिन घर में अकेली रहतीं थीं उसके माता-पिता नौकरी पर जातें थे जिसके कारण वे उनके साथ नहीं रह पाते थे और वह घर में अकेले रह जाती थी।

वह जैसे ही बाहर गई तो देखा, मट्टी के आग़न के थोड़ी आगे एक रूई के पेड़ के साथ एक छोटा सा बकरी का बच्चा बंधा हुआ है।बकरी का बच्चा अब तक शौशव अवस्था को भी पार नहीं कर पाया था। बकरी का बच्चा पिंकी को देख कर खड़े होने का कोशिश करता है पर वह जैसे ही खड़े होता है लड़खड़ाकर गिर जा रहा था. उसकी ममता मय आँखें पिंकी की सारी दु:ख, अकेलापन को वही खत्म कर एक सनेह का रिश्ता जुड़ जाता है।

उसकी छोटे- छोटे चमकीले पानी दार आँखों से उसे टक- टक्की लगा कर देखती थी तो प्रयुक्त गति से बिजली की लहर हृदय में समा जाती थी । उसकी काले रंग की लछेदार छोटे-छोटे बालो वाला कोमल छोटा शरीर था। छोटा - सा मुँह और नाक पर लम्बी- लम्बी कान थी। उसे रखते ही हर कोई उसके मोह में बंध जाता था। पिंकी भी एक ही पल में उसके मोह में बंद जाती है.पिंकी ने बकरी के बच्चे का नाम मोनू रखा. पर यहाँ कहानी मोनू और पिंकी की निस्वार्थ श्नेह की कथा नहीं बल्कि मनुष्य की निष्ठूरता की कथा है. दादी माँ मोनू को पिंकी के पास छोड़ कर चलीं गई और वह बहुत देर तक वही मोनू की ओर एक टक निहारती रहीं. मानों उसके जीवन में खुशी और उत्साह का लहर दौड़ पड़ी।

मोनू के आने के बाद वह बहुत खुश रहतीं थीं। उसकी देखभाल करने, उसके साथ खेलने में उसका जीवन बीतने लगा। उसे पता ही नहीं चलता कि कैसे दिन बीत जाता था। मोनू के मुँह इतना छोटा था कि बड़ी ही मुसकिल से उसे दूध पिलाया जाता था । पिंकी उसके लिए

हर रोज़ नरम- नरम हरी- हरी घास ले आती और उसे खिलाने की कोशिश करतीं थीं। और वह थोड़ी - थोड़ी कर पीति गई और तदरूस्त होती गई। उसकी स्नेह मय देख भाल से वह कुछ ही दिनों में चलने- फिरने लगीं।

वह भी धिरे- धिरे पिंकी से जुड़ते चलीं गई और रात होते वह घर में उसके बिस्तर में चढ़ जाती थी और उसके पैरों के पास ही सो जाती थी। वह सुबह होने पर ही पिंकी का चादर अपने छोटे से मुह में लेकर खींच कर फेक देतीं हैं जिससे पिंकी को उठना ही पढ़ता है उसके उठने के बाद ही वह कमरे से बाहर निकलतीं है। उसके बाद पिंकी तो स्कूल चलीं जाती पर मोनू का तो दिन भर का काम निधारित था। वह दूध पिकर एक आंधा टुकड़ा रोटी खा कर वह घर के आगन में ही घूमती- कूदती रहतीं थीं फिर वह कौलनी में ही घूमती रहती थी और वहां के सभी बच्चें उसके साथ खेलने के लिए उसे उत्सुकता से उसे बुलाते थे, कोई उसके माथे पर बिंदी लगाता तो कोई माला उसके गले में पहना देता तो कोई उसके काले- काले खुरों पर नेलपोलिशं लगा देता। कुछ बच्चे उसे खिलाने के लिए विस्कुट लाते तो कोई फल- सब्जी ले कर आता और उसे खिला देता। ये सारे तमाशें खत्म होने के बाद वह पास के हि एक मौदान पर कभी घास चढ़ती तो कभी धूप सकती थी। मोनू को दिन भर के तमाशे के बाद पिंकी के स्कूल से आने का समय उसे कैसे पता होता था यह बताना मुश्किल है । वह ठीक समय पर घर आ जाती और पिंकी के पीछे कुदरती खेलतीं रहतीं। उसके खाना खाना समाप्त होने तक वह वही रहतीं। वह भी अपनी भोजन से कुछ चावल, सब्जी उसे दे देतीं।

वह खा तो लेतीं थीं पर उसे घास या कच्ची सब्जी ही अधिक पसंद था। मोनू को पिंकी के साथ खेलना अधिक अच्छा लगता था वह उसके ऊपर से दुसरी ओर कूदती रहतीं। ऐसा वह बहुत देर तक खेलतीं रहतीं। वह अपना प्यार दिखाने के लिए उसके आगे या पीछे कूदती रहतीं तथा अधिक प्रेम दिखाने के लिए पैरों को सिकुड़कर इतनी जोर से छलाग लगातीं की चोट लगने का कोई सम्भवना ही नहीं रहता।

कभी वह उसके कपड़े का एक कोना मुँह में लेकर बचाती रहतीं तो कभी उसके स्कूल के कौपी- किताबों को ही चबा डालती। उसे बाटने पर हैरानी से देखतीं रहतीं क्योंकि वह तो अपना स्नेह प्रकट कर रहा था।

अब वह एक जानवर न रहकर घर का एक स्नेही साथी बन गया था। उसे रसगुल्ले बहुत पसंद था और घर में जब भी रसगुल्ले लाते तो उसे कैसे पता चल जाता यह भी बता पाना मुश्किल है, वह ठीक समय पर घर में आ जाती और सोफा में पैरों को तोड़कर बैठ जाती और जब तक वह रसगुल्ले खा कर ही उठती।

पिंकी को एक ऐसा साथी मिल गया था जिसके साथ वह पूरा दिन खेलतीं तथा खुश रहतीं । मोनू एक जानवर थी उसे सिर्फ स्नेह दिखाना आता था उस में मानवीय प्रवृत्ति नहीं थी। वह तो सिर्फ प्रेम की ही भावना समझता था ।

ऐसे ही दोनों का जीवन बितने लगा और देखते ही देखते एक वर्ष बीत गया। वह अब एक छोटा स्वाक से एक बकरा बन गया था। उसका कोमल हिस्ट-पुस्ट शरीर, टांगें अधिक सुडौल और खुरों में अधिक काले पन आ गए। आँखों में और अधिक चमक आ गए जिसके कारण वह अब लोगों को अपनीं ओर आकर्षित करने लगा था।

कौलनी के लोग तथा उसके पिता के सहकर्मी लोग किसी न किसी बहाने से या मज़ाक से उसे अपना भोजन बनाने कि बात करते पर पिंकी के पिता हर बार उन्हें टाल देते या डाट देतें पर उनका प्रत्यन जारी रहा।

होली का त्यौहार था । पिंकी हर बार की तरह अपनी दादी के घर गई थी उसे मोनू को छोड़ कर जाने का मन तो नहीं था पर उसके दादी के आग्रह करने पर वह चलीं गई। होली का दिन

था पूरे कौलनी में उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव, शराब और मास के बिना अधूरा था। उस दिन पिंकी के पिता भी बहुत शराब पियें हुए थे और आपने स्वभीक हालत में नहीं थे और उन के दोस्तों ने उनकी इस अवस्था का फायदा उठाया और जब उन लोगों ने मोनू को काटने की बात कही तो उन्होंने भी कुछ सोचें बिना हाँ कह दी। वास्तविकता में वे कुछ सोचने या समझने की अवस्था में ही नहीं थे। वहाँ के सारे लोग कल तक उसे स्नेह के नज़रों से देखते थे, आज उसे मात्र एक खाघय समाग्री की तरह देख रहें थे और उसका निर्दयता से उसे काट कर घरों में विभाजित कर दिया। कितना कष्ट कार होगा मोनू के लिए वहाँ पल। मुझे हैरानी होती है मनुष्य मृत्यु को इतना भयानक, अवपीत्र, अपशगुन मानते हैं कि वह अपने प्रिय से प्रिय आत्मीय जन का शैव को भी वह भयानक, अस्पष्ट, अपवित्र मानता है तो क्यों वह दूसरे जीवों में इसे बाटता फिरता है। कैसे मनुष्य किसी जीव को नीशकृय और जड़ बनाने के कार्य को इतना आनद से उसका स्वाद लेता हुआ कार्य को सम्पन्न करता है। तब क्यों? वह भयानक, अपवित्र नहीं होता।

समाज की एक कड़वी सच्चाई ये भी है मनुष्य कई जीवों को घरों में सिर्फ इसलिए पालते है कि वे उनका बाद में अपना भोजन साम्रगी बना सकें। उसमें बकरी भी एक जीव हैं। पर कैसे मनुष्य को मानवीयता छोड़ने में एक पल नहीं लगता। इस जीव की भी आँखें करूणामय का एक मुरत झलकती है।

साम में जब पिंकी दादी घर से लौट आई तो घर के आगन में मोनू को न देखकर वह बेचौन हो गई।

वह अपनी माँ से पुछती है पर उसे कोई जबाब नही मिला, फिर वह मोनू- मोनू की आवाज़ें देने लगीं किंतु चारों ओर मानो अकाल मृत्यु की सन्नाटा छाया हुआ हो। आसमान में एक रक्तमय ला लीमा छा गया हो। अजीब सा डर उसे घेरे जा रहीं थी और निराशा और हताश हो कर वहाँ धर लौट आई। वहाँ फिर से एक बार अपनी माता- पिता से पुछती है पर माँ कहतीं है माँ-यही कहीं घास चरने गया होगा आ जाएगा तुम मूहँ- हाथ धो कर खाना खा लो तब तक आ जाएगा।

तब तक पिंकी का नशा उतर चुका था और उन्हें एहसास हो चुका था कि उन्होंने कितनी अमानवीय निष्ठुरता का काम का हिस्सा बने थे। वह अपनी बेटी का सामना नहीं कर पा रहे थे। पिंकी चिंता, दुख हताशा के साथ खाने के टेबल में बैठीं। उसके सामने चावल, मछली, दाल, मास (मटन) सब कुछ बना हुआ था, वह चावल का पहला निवाला लेने ही वाली थी कि उसका एक दोस्त आ गया और उसे देखते ही पिंकी पुछने लगीं।

पिंकी- आशा तुम ने मोनू को कहीं देखा है? मिल नहीं रहा है।

आशा- मोनू!

पिंकी- हाँ

आशा- (हस्ते हुए बोलीं) तुम्हारे थाली में तो है मोनू!!

पिंकी का मानों एक ही पल में सपूर्ण अस्तित्व ही हिल गया। वह निश प्राण की तरह बहुत देर तक वही थाली को देखतीं रहीं। जब उसे होश आया तो उसने अपनी माँ से पुछीं।

माँ- क्यों??

माँ- मेरी कहाँ सुनते हैं वे, मैंने लाख मना किया पर वे नहीं मानें।

पिंकी- पर क्यों?

माँ- तुम्हारे पिता तब बहुत नशें में थे न सुनने न समझने की अवस्था में थे।

वह भाग कर अपने पिता के पास जातें हैं और पुछती है।

पिंकी- बाबा आप न ऐसा क्यों किया? आप तो मोनू को प्यार करते थे, रसगुल्ले लाते थे, तो क्यों??

पिता - .....!!

उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ कि शराब मानव को किस तरह मानव से एक निष्ठुर पशु बना देता है और उन्होंने अपनी सारी शराब की बोतलें तोड़ दी। उस दिन के बाद वे कभी शराब नही पियें।

उस घटना के बाद से पिंकी ने शराब विरूद्ध अभियान मोहिम चलाने लगीं, और कई जनवरों को अपने घर में पालती है और उन के सुरक्षा के लिए कई अभियान भी चलाई। वह समाज को यह समझाई की जनवार केवल एक खाधय सामग्री बल्कि एक प्राणी हैं।

डॉ नीता समद्दार

कतार

इंदु सिन्हा ''इंदु''

माटी का चोला हे.. राम - । मनोज के मूँह से निकला, जो मुक्तिधाम में पीपल के घने पेड़ के नीचे बैठा शवों की कतार देखकर बोला था, खुद अपने आप से। माँस जलने की दुर्गन्ध आसमान और हवाओं में फैली हुयी थी। थोड़ी थोड़ी दूर पर लोग खड़े थे या बैठे थे बिखरे बिखरे। जिंदगियाँ बिखर रही थी, लोगों के आँसू सूख चुके थे। ये सर्वथा गलत होगा। आँसू तो आ ही नहीं रहे थे, लोग स्तब्ध थे चकित थे, सदमे में थे। मुक्तिधाम के बाहर की तरफ मंदिर बना था, मंदिर में विराजवान कृष्ण भगवान की मूर्ति के अधरों पर मधुर मुस्कान थी।

मनोज इंतजार कर रहा था अपने भाई के शव के जलने की बारी का | अभी तो लाइन लम्बी थी। दो दिन पहले भाई राकेश हँसता और जीवित था, आज यहां कतार में है खुद के जलने की कतार में। कतार से कितना चिढ़ता था राकेश, बोलता था भैया इस कतार से कभी छुटकारा मिलेगा भी या नहीं। दवाईयों के लिये, राशन के लिये, हर जगह कतार कतार। चिढ़ आती है गुस्सा आ जाता था। उसे लेकिन इसका हल कुछ नहीं था।

बचपन से सुनते थे नानी, दादी से महामारी और छूत की बीमारी के बारे में, गरीबों की बेबसी के किस्से, आश्चर्य करते थे, दुःखी हो जाते थे। लेकिन किसने सोचा ये सब हमारे जीवन में हमको भी देखना होगा। लोग रोटी को तरसेगे, दवाईयों को तरसेगे, जीवन को तरसेंगे। अभी कुछ दिन पहले पड़ोसी राशिद भाई के यहां जवान बेटेकी कोरोना से मौत हो गयी | चेहरा नही देख पाए ,बस खबर आयी |उसके मरने के बाद बहू ने फाँसी लगा ली। दो बच्चे और कमजोर बूढ़े हो चुके राशिद भाई के कंधों पर जवाबदारी के रुप थे। लेकिन मोहल्ले वाले परेशान हो उठे जब कुछ दिन में राशिद भाई ने भी फाँसी लगा ली। दोनों बच्चों को पुलिस ले गयी। अपनी कस्टडी में राशिद भाई के घर में कोई नहीं बचा बच्चों के अलावा। कोरोना राक्षस के चलते कोई नहीं आ सकता था ना ही जा सकता था। बेबस कैद था, हरेक आदमी लॉक डाउन और कर्फ्यू के पहरों के बीच।

क्या है ये सब, भगवान, तू कहाँ है, तेरा दिल नहीं पसीजता, कभी तो रो ले मनुष्यों दुःख और तकलीफो पर, कैसी दुनिया बना दी तूने, क्या चल रहा है, क्या चाहता है तू? क्या ये ही कलयुग है? कोरोना राक्षस के रुप में आया है, मनुश्यों की जान लेने? कभी पता भी दे दिया कर, क्या करे कहाँ तलाशे तुझे? बता -।

कहकर - मनोज घुटनों के मूँह दिये फूट फूट कर रोने लगा। आसपास बिखरे लोगों का ध्यान पल भर के लिये उस पर गया फिर वो वापस मूर्ति के सामने खड़े होकर शवों को जलते हुए देखने लगे।

थोड़ा दिल हल्का होने पर मनोज ने सिर उठाकर देखा तो पाया अभी तो बहुत टाइम लगेगा, शवों की कतार लम्बी है।

गर्मी से बेहाल, मनोज की शर्ट पूरी पसीने से भीग रही थी, अजीब सी चिपचिपाहट पूरे शरीर में महसूस हो रही थी। तभी एक ठण्डी हवा का झौकां आकर थोड़ी राहत दे गया। उसे थोड़ा सा सुकून मिला, हवा का झौंका पेड़ से आया था, जिस घने वृक्ष के नीचे वो बैठा था।

क्या सोच रहा है मनोज?

मनोज एकदम से चौंक गया, चारों तरफ सिर घुमाया कहीं कोई नहीं था।

ये आवाज़ तेरे भीतर से आ रही है मनोज। आवाज़ फिर गूँजी।

मतलब -। मनोज आश्चर्य में था।

हाँ मनोज जिस पेड़ के नीचे तू बैठकर सुकून भरी ताजा हवा ले रहा है, वो प्राण वायु मेरी दी हुयी है। कितनी बेदर्दी से काटते हो हमारे सर

को। क्या हमको दर्द नहीं होता? हमें तकलीफ नहीं होती? हमारे बच्चे नहीं है? कितने परिवार उजाड़ देते हो तुम लोग। अपनी आधुनिकता के कारण। डिजीटल इंडिया चाहिये तुमको? इसी डिजीटल इंडिया का सपना देखते हो तुम लोग? हाँ बोलो ...। मनोज का मन काँप गया, दहल उठा उसका दिल -। आवाज़े लगातार उसके कानों में गूँजने लगी। पेड़ों से हवाएँ भी जोर जोर से चलने गी। घबराकर दोनों कान बंद कर लिये उसने जिससे आवाज़े ना पाये। लेकिन सामने देखा तो फिर लगा। पेड़ ही बात कर रहे है उससे।

उसे लगा शायद आवाज़ बंद हो गयी हो गयी हो, उसने धीरे से हाथ हटाए कानों से। उसे लगा अब आवाज़ नहीं आयेगी।

क्यों क्या हुआ मनोज? आवाज गूँजी।

मैंने अपनी तकलीफ बतायी तो कानों पर हाथ रख लिये तुमने। आवाज़ आयी। मेरे घर परिवार उजाड़ दिये तुम लोगों ने। खुद के घर परिवार उजड़ रहे है तो तकलीफ हो रही है।

कौन से परिवार तुम्हारें? हमने कुछ नहीं किया। मेरा पीछा छोड़ दो। अकेले रहने दो मुझे। मैंने कुछ नहीं किया?

क्यों मेरा परिवार नहीं है क्या? सैकड़ों साल की उम्र छोटी है हमारी, घने घने विशाल तने वाले, घनी-घनी गहरी जड़ों वाले -। हजारों परिंदों का घर है हमारा, विशाल घनापन, घनी डालियाँ -। रोज शाम ढले हजारों परिंदे इस घर में रात बिताते है, नन्हें-नन्हें बच्चों के साथ। ये हजारों परिंदे मेरा परिवार है, हमको काटने से ये हजारों पक्षियों को बेघर कर दिया है तुम लोगों ने । ना जाने कितने परिंदे मर जाते हैं। जब मशीनों से तुम बेदर्दी से हमें काटते चले जाते हो। मोटी-मोटी डालियों के नीचे ना जाने कितने बच्चे दबकर मर जाते है। कितने तड़पते है, कितनी तकलीफ होती होगी उनको? अहसास है डिजीटल इंडिया वाले लोगो।

क्यों जवाब नहीं देते बन रहा है तुमको - ?

नहीं - नहीं मुझे अकेला छोड़ दो। प्लीज चले जाओं यहाँ से। मनोज चिल्लाया।

कहाँ कहाँसे भगाओंगे मुझे तुम। हर जगह मैं दिखूँगा। कही हरा भरा, कही कटा और तड़पता हुआ। मैं हूँ तो तुम्हारी साँसे है, मैं नहीं तो तुम भी नहीं। खुद देखो हमारा अस्तित्व मिटाने पर तुल गये हो तुम, ईश्वर ने तुम्हारे अस्तित्व को मिटाना शुरू कर दिया। हम पागल हो चुके थे सहन करते करते, जिनसे जीवन है उन ही को नश्ट करते हो तुम लोग। जब खुद जीवन देने वालों की कीमत नहीं तुम्हारी नज़रों में तो जीवन देने वाला कब तक सहन करेगा तुम्हारे अत्याचार।

जंगल के जंगल नश्ट करने पर तुल गये हो तुम लोग, प्रकृति का मौन शाप है तुम पर। समझे। आवाज़ धीमी होती चली गयी - दूर होती चली गयी।

मनोज की आँखे सूज गयी रोते-रोते -।

उसकी आँखों के आगे भाई का चेहरा घूम रहा था, एक बार राकेश को पराठे बनाने का शौक हुआ था। बोला था, भैया माँ इतने अच्छे पराठे बनाती है, आज मैं भी कोशिश करके देखता हूँ। राकेश ने किचन में जाकर पराठे बनाने शुरू कर दिये थे आडे तिरछे बेले गये पराठे देखकर वो खूब हँसा था, तब माँ ने उसे ही डाँट पिलायी थी, करने दे शौक पूरा उसे। बातों बातों में राकेश का हाथ खाली गरम तवे से जाकर टकराया वो एकदम से चीख उठा था, जलने का लाल निशान उँगली पर उभर गया था।

बाप रे, जलने पर इतना दर्द। राकेश के हाथ पर माँ फ्रिज से बर्फ का टुकड़ा निकालकर मलने लगी थी।

आज वही राकेश कतार में था, जलने के। राकेश मेरे भाई उठ जा, भाई, तू बोल रहा था, कि जलने पर इतना दर्द। देख भाई, आज तो पूरा शरीर ही जलाया जायेगा भाई। कैसे सहेगा इतना दर्द राकेश उठ जा, कैसे सहेगा इतनी जलन।

तभी उसके मोबाइल पर लगातार मैसेज आने की आवाज आने लगी। इतने मैसेज एक साथ कौन है। आँखों से बहते आँसूओं को पौछते हुए उसने मोबाइल जेब से निकाल देखा कोई मीडिया का ग्रुप था दो दिन पहले गंगा नदी में मिली सैकड़ो लाशों की खबर और फोटो भेजे थे। जैसे ही नजर पड़ी आत्मा काँप गयी, उसकी।

कई लाशों को तो कुत्ते नोच रहे थे। लाशे फूल गयी थी पानी कई लाशे किनारे पर पड़ी थी। भगवान।

हे! ये कैसा समय है। कलयुग है भगवान बचाओं मेरे देश को।

किन पापों की सजा मिल रही है हम सबको हम सब तेरी संतान है प्रभु। थोड़ा रहम करो प्रभू। थोड़ा रहम।

हा हा हा .... अट्टहास - । गूँजा हवाओं में। मनोज चौक गया। मनोज डर गया कौन है यहाँ जो इतनी जोर से हँस रहा है। कौन है। मनोज से कुछ दूरी बनाकर बैठे हुए लोग अचानक से उठकर मनोज के पास आये|

क्या हुआ मनोज भाई। नजदीक जा नहीं सकते है, क्यों कि मनोज को भी कोरोना के हल्के लक्षण थे। सब दूर दूर ही रहे।

कुछ नहीं, कुछ नहीं हुआ। मनोज बोला।

जवान भाई मर गया है बेचारे का मानसिक संतुलन बिगड़ गया है। क्या करे जवान मौत का दर्द बड़ा ही भयानक ही होता है।

मनोज डर गये ना । आवाज गूँजी । कौन हो तुम? सामने क्यों नहीं आते। मनोज बोला।

अरे, मैं समय हूँ -। मैं तो बस महसूस होता हूँ तुम मुर्ख मनुष्यों को दिखता नहीं हूँ। मुझे आर्श्चय होता है मनोज।

क्या? मनोज बोला।

आर्श्चय इसलिये कि तुम लोगो को बेजूबानों की चीखे नहीं सुनायी देती। दर्द महसूस नहीं कर पाते। जब खूद को दर्द होता है तो महसूस होता है। तकलीफ किसे कहते है? दर्द क्या होता है, अपनों को खोने का दर्द। ये बिछी हुई लाशों के ढेर, तड़पते लोग, ऑक्सीजन के लिये भीख मांगते लोग। सिसकते लोग। ऑक्सीजन तो पेड़ पौधे तुमको फ्री में देते है कोई पैसा नहीं लेते, रुपये नहीं लेते। तुम्हारी दुनिया देखो। ऑक्सीजन तक बिक रही है।

साँसों की कीमत वसूली जा रही है। ये है तुम इंसानों की दुनिया। आवाज खामोश हो चली थी। सही ही आइना दिखा रहा है समय। हम तो इतने पापी है गंगा नदी ने भी अपनी गोद में जगह नहीं दी। बाहर फैंक दिया।

खुदगर्ज, स्वार्थी, हैवान लोगों को। हम क्या करते है माँ गंगा के लिये, पेड़ पौधों के लिये, शायद उसी की सजा दी है, प्रकृति ने।

चलो मनोज अपना नंबर आ गया।

राकेश की लाश का नंबर आ गया था।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

सिद्धेश्वर

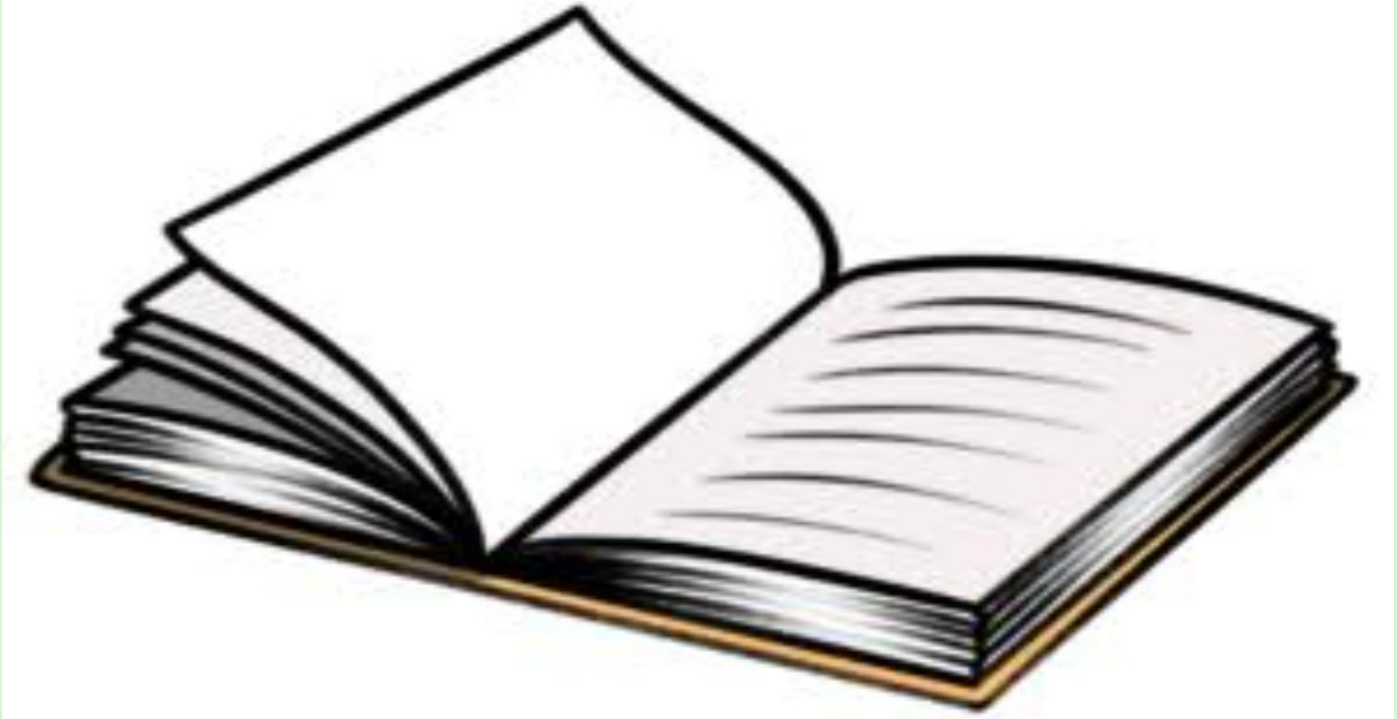

छपास की भूख और हम

"अ रे यार, तुझे भी छपास का रोग लग गया है क्या? जहां देखो वहां तुम छाए रहते हो! अखबार हो या पत्रिका, हर जगह तुम्हारा नाम, तुम्हारा फोटो! "

" तो क्या हुआ भाई ? मेरे उस नाम और मेरे फोटो के साथ मेरी कविता, मेरी लघुकथा या मेरी कहानी नहीं होती है क्या ? "

" होती है,....होती है भाई मेरे! तभी तो मैं कह रहा हूँ कि इतनी छपास की भूख अच्छी नहीं...! "

" तो तुम ही बतलाओ भाई मेरे, कि छपास की कितनी भूख अच्छी होती है ? " एक सवाल पुनः उस पर दागते हुए उसने कहा -

"..... अरे भाई किसी की रचना चोरी करके तो नहीं छपवा रहा हूं न ? खूब पढ़ता हूँ, खूब लिखता हूं और देश भर की पत्र -पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं भेजने का श्रम करता हूं!और फिर उन्हें मेरी जो रचनाएं पसंद आती है वह उसे अपनी पत्र -पत्रिकाओं में प्रकाशित करते हैं 1 हजारों पाठक उसे पढ़ते हैं और अपनी प्रतिक्रियाएं भेजते हैं 1...तो क्या मैं उन्हें अपनी रचनाएं छापने से मना कर दूं ? या चुपचाप लिख लिखकर अपनी रचनाएं और अपनी साहित्यिक खबरें, अपने बक्से में बंद करता रहूं ? कहीं भी प्रकाशनार्थ भेजूँ ही नहीं ! "

" यार,तुम तो मेरी बात समझे ही नहीं ? अरे भाई , अपनी रचनाओं और साहित्यिक खबरों को प्रकाशित करवाने के पीछे इतना श्रम करने की जरूरत ही क्यों है ? " - थोड़ा रुक कर फिर वह आगे बोला -

" इसलिए तो कह रहा हूं कि तुम्हें छपास की रोग लग गई है 1 इसलिए तो लिखने पढ़ने और फिर उसे प्रकाशित कराने के लिए पत्र-पत्रिकाओं में लगातार रचनाएं भेजने में इतनी मेहनत करते रहते हो, इतना अधिक श्रम करते रहते हो ! अरे भाई एकाद रचनाएं या खबरें कहीं प्रकाशित हो गई,तो हो गई! बस लिखो और खूब लिखते रहो ! "

" अच्छा, तुम्हीं एक बात बतलाओ 1 हम या तुम लिखते हैं किस लिए और किसके लिए ? सिर्फ स्वांत: सुखाय और सिर्फ अपनी तृप्ति के लिए ? या फिर व्यक्ति, समाज और पूरे देश के लिए ? हां....हां तुम ही बतलाओ आखिर साहित्य का उद्देश्य क्या होता है ?,,,,,,,,,और फिर किसान अपने खेतों में अन्न उपजाता है किस लिए और किसके लिए ? सिर्फ अपने पेट की भूख मिटाने के लिए, या फिर व्यक्ति समाज और देश की भूख मिटाने के लिए ? ".. "

" हां हां समझ गया, समझ गया मित्र! हमने तो अपने लेखन का महत्व इतनी गंभीरता से कभी सोचा ही नहीं 1 हमारे अमर साहित्यकार भी सिर्फ लिख लिखकर अपनी रचनाएं बक्से में बंद करते रहते तो उनकी रचनाओं का प्रभाव व्यक्ति,समाज और देश पर पड़ता क्या ? अमर कथाकार प्रेमचंद ने भी तो कहा है कि हम लोग कलम के मजदूर हैं, तो फिर मजदूरी हमें मिलनी चाहिए या नहीं ?..... अरे भाई, यह मजदूरी भी आजकल कितने साहित्यकारों को नसीब होता है ? कितनों की रचनाएं तो अप्रकाशित ही दफन हो जाती है और उनकी न अपनी भूख

मिट पाती है,न समाज की l लेखक यदि कलम का मजदूर है तो उसे अपनी मजदूरी तो मिलनी चाहिए न ? "

###

आपने देखा होगा कि आपके मित्र कभी-कभी मजाक मजाक में इस तरह की बातें कह जाते हैं l कुछ ऐसी ही बातें मुझे कल एक साहित्यिक मित्र ने कहा, तो कई घंटो तक मैं उस पर चिंतन करते लगा l चाहता तो मजाक मजाक में मैं उन बातों को भी भुला भी देता l लेकिन अक्सर इस तरह की बातें हमारे जीवन में घटते रहती है l इसलिए इन बातों पर सोच विचार करना मैं जरूरी समझा l और सोच विचार और गहन चिंतन के पश्चात मैंने इन विषय के आधार पर एक लघुकथा भी लिख डाला -" कलम का मजदूर "! इस लघुकथा के माध्यम से ही हमने आज की बात, यानि "तेरी मेरी दिल की बातें " के तहत कुछ कहने का मन बनाया हूं !

यह छोटी सी लघुकथा बहुत सारी बातें बिना कहे कह गई है l फिर भी मैं कुछ कहना चाहूंगा lआप के साथ अपनी बातों को साझा करना चाहूंगा l अपने दिल की बातें कहना चाहूंगा और आपके दिल की बातें भी सुनना चाहूंगा l क्योंकि आपके भीतर भी इस तरह के सवाल कई बार उठते होंगे कि मैं आखिर कविता या लघुकथा या कहानी लिखता क्यों हूं? सिर्फ छपास की भूख शांत करने के लिए ? अपने मन की शांति के लिए ? या फिर इसके आगे भी हमारे लेखन का बहुउद्देश्य होता है ?

यह सही है कि कोई भी लेखक स्वान्त: सुखाय ही सृजन का आरंभ करता है l लेकिन वह जो कुछ अपने दिल की बातें कहना चाहता है, वह सिर्फ खुद से नहीं कहना चाहता!अपने भीतर खुद से सवाल करते हुए वह व्यक्ति समाज देश से भी सवाल करता है l यहां तक कि विश्व से भी l पूरे मानव समाज से l फिर इस तरह के सवाल उसका व्यक्तिगत कैसे हो सकता है ? उसकी बातें सिर्फ स्वांत:सुखाए कैसे हो सकती है ?

कहा भी गया है कि जब तक रचना प्रकाशित नहीं होती, वह लेखक की व्यक्तिगत संपत्ति होती है l लेकिन प्रकाशन के बाद व समाज की संपत्ति हो जाती है l ठीक उसी प्रकार, जैसे किसान अपने खेत में जब अन्न उपजाता है, तो सिर्फ अपने पेट की भूख भी मिटा सकता है l लेकिन उसका उद्देश्य अपने पेट की भूख मिटाना नहीं होता l वह इतना श्रम और मजदूरी करता है, व्यक्ति समाज और देश के लिए l यहीं पर प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से बाहर की ओर निकलता है l व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से देश बनता है l और तभी उसमें संपूर्णता आती है l

किसान का अपने खेत में उपजाया हुआ अन्न जब बाजार में जाता है, तब उसके श्रम का मूल्यांकन होता है औऱ उसे अपने श्रम की मजदूरी मिलती है l तब उसे सिर्फ अपने भीतर की भूख शांत नहीं होती, परिवार समाज और देश की भूख शांत होती है l

यदि प्रेमचंद ने साहित्यकार को कलम का मजदूर कहा है तो उसके पीछे भी उनका यही चिंतन काम किया होगा, मेरा दिल यह कहता है l और इसी में किसी भी साहित्यकार की संपूर्णता भी है l यह अलग बात है कि सभी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता / कहीं जमीन तो कहीं आसमान नहीं मिलता l

बहुत सारे ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने बहुत कुछ बेहतर लिखा होगा, लेकिन उनकी जिंदगी के साथ-साथ वह भी दफन होती चली गई l उनके लेखन का लाभ व्यक्ति समाज या परिवार को नहीं मिल सका l देश उनके साहित्य से लाभ लेने में वंचित रह गया l

लेकिन इसके पीछे बहुत कुछ किस्मत का हाथ है, तो बहुत कुछ अपने कर्म का भी l कोई भी किसान अन्न उपजाता है, फसल पाने के लिए l लेकिन जब नसीब नहीं साथ देता तो उसकी धरती बंजर ही रह जाती है, फसल उग नहीं पाती l

लेकिन यहां पर थोड़ी देर के लिए सोचिए कि जब किसान श्रम ही ना करें, खेत में बिज ही न डालें, खाद पानी ना डालें, किस्मत के भरोसे छोड़ दे, तो क्या उसके खेत में फसल लह लहाएगी ? यहां पर दोष किसान के श्रम का होगा या किस्मत का ?

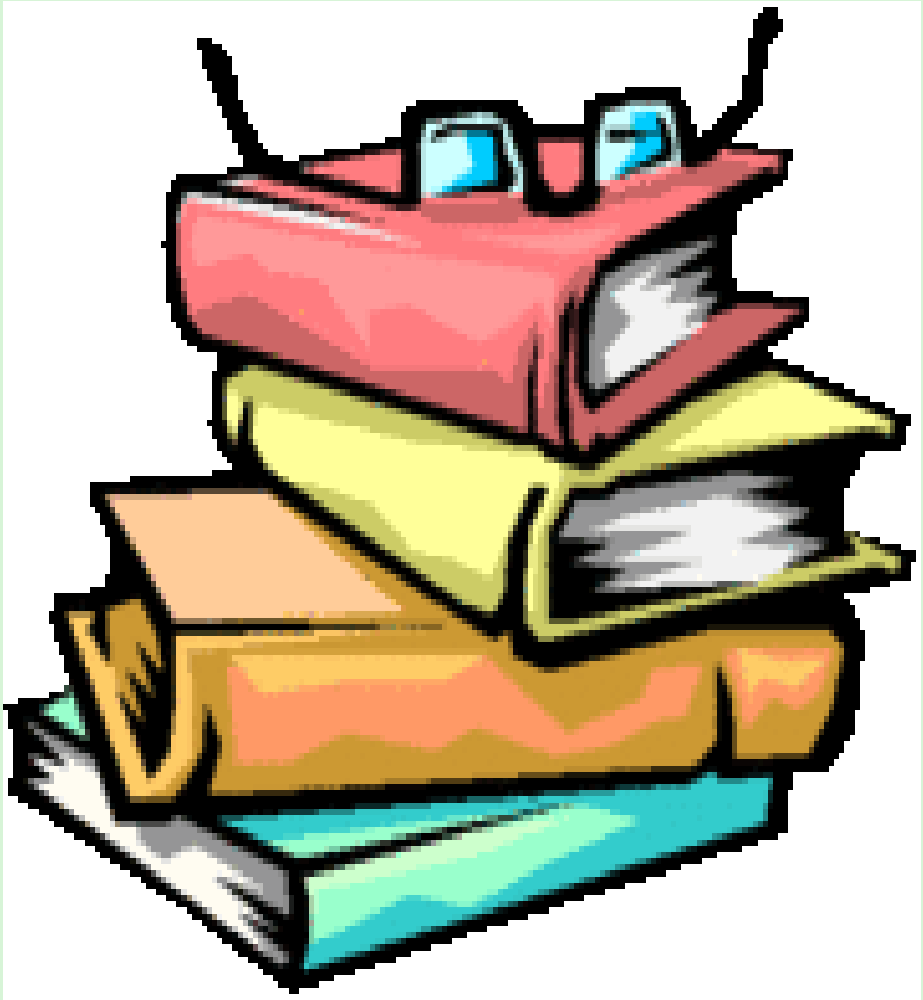

किस्मत हमारे हाथ में नहीं लेकिन श्रम तो अपने हाथ में है l फल चाहे जो भी मिले, सफलता मिले या असफलता मिले, वह सब कुछ श्रम करने के बाद का परिणाम है l इसलिए किसान की तरह प्रत्येक सफल असफल साहित्यकारों को किस्मत के भरोसे नहीं बैठना चाहिए l सफलता मिले या असफलता, श्रम का मजदूरी मिले या ना मिले, हमें अपनी कलम को हल बनाना ही होगा, पूरी ईमानदारी से शब्दों का बीच का रोपण करना ही होगा l उसके बाद ही हम अपनी कलम की मजदूरी की अपेक्षा कर सकते हैं !

लेकिन हमने बहुत ऐसे साहित्यकारों को भी देखा है, जो अपनी असफलता का श्रेय सीधे-सीधे अपने मित्रों पर ठोक देते हैं l खुद तो आगे बढ़ने का प्रयास करते नहीं, अपने मित्र साहित्यकारों को श्रम करता हुआ देखकर भी श्रम करते नहीं, लेकिन उनकी लेखनी में शब्दों का फसल लहलहाते हुए देखकर, उनके श्रम का मजदूरी मिलता हुआ देखकर, उनके भीतर द्वेष और ईर्ष्या की भावना जन्म लेने लगती है l और तब वह उनका उपहास करते भी नहीं चूकते " आपको छपास का रोग लग गई है ? " अक्सर ऐसा सवाल कर, वह उनकी राह में रोड़ा का काम करना चाहते हैं l इंसान के भीतर की यह बहुत बड़ी कमजोरी है l चाहे वह कमजोरी मेरे भीतर हो या आपके भीतर l इससे बचने की कोशिश करनी चाहिए l और चाहिए यह भी कि , हम किसी को दौड़ता हुआ देखकर, उसकी टांग में अपनी टांग अड़ा के गिराने की कोशिश ना करें, बल्कि अपने रास्ते पर उसकी तरह स्वयं दौड़ने का प्रयास करें, स्वयं भी श्रम करें l क्योंकि बिना श्रम का कुछ भी नसीब नहीं होता।

हलाकि कई लोगों को अपने श्रम पर भी विश्वास नहीं होता, क्योंकि उन्हें अपने नसीब से ज्यादा, अपने अनैतिक कर्मों पर विश्वास होता है, किसी की बैसाखी के सहारे छोटे रास्ते से आसमान को छूने की तमन्ना रहती है l वैसे छद्म साहित्यकार, भाई भतीजावाद, सोर्स पैरवी, चमचागिरी और तमाम अनैतिक कुकर्मों के माध्यम से, साहित्य के क्षेत्र में भी गंदी राजनीति खेलने के आदी हो जाते हैं l

यह भी सच है कि ऐसे साहित्यकारों को सफलता भी मिल जाती है l इनके गलत कर्मों और गलत दिशा में की गई मेहनत की मजदूरी भी मिल जाती है l लेकिन यह मजदूरी साहित्य में रिश्वत मिलने के जैसा होता है l जिस तरह रिश्वत क्षणिक सुख देता है, झूठा मान सम्मान देता है, उसी प्रकार l और वे कुछ समय के लिए आकाश का सितारा बन जाते हैं l

लेकिन जिन साहित्यकारों को प्रेमचंद बनना है, रेणु बनना है,बच्चन बनना है, निराला बनना है,महादेवी बनना है यानी इतिहास पृष्ठों पर अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में दर्ज करना है, अमर साहित्यकार बनना है, उन्हें साहित्य की इस रिश्वतखोरी से बचनी होगी l ऐसे छद्म साहित्यकारों के भीतर भी छपास की भूख बहुत ही प्रबल रूप में होती है l साहित्य की राजनीति खेल कर, और गलत रास्ते से साहित्य की आकाश में छाने के लिए, छपास की भूख को आग का रूप देते हैं, तो कहीं ना कहीं से वे अपने इस आग में खुद भी अपने व्यक्तित्व को झुलसा रहे होते हैं l

साहित्य का इतिहास देखिए, ऐसे छद्म साहित्यकार कहां खो गए ? औऱ प्रेमचंद, निराला, शिवपूजन सहाय ,महावीर प्रसाद द्विवेदी, महादेवी जैसे व्यक्तित्व के रचनाकार का व्यक्तित्व आज भी प्रेरक क्यों बना हुआ है? क्यों विश्व में आज भी ऐसे साहित्यकार जीवित है ? क्यों उनका साहित्य आज भी उतनी ही गंभीरता से पढ़ी जा रही है ?

पैसे की भूख एक मजदूर को भी होता है और एक रिश्वतखोर को भी! अब आप स्वयं समझ सकते हैं कि किसकी भूख जायज है और किसकी नाजायज़ l एक भूख हमें श्रमजीवी बनाता है और एक भूख हमें आलसी l एक भूख हमें सोते में जगाता है और एक भूख जागे हुए को भी सुला देता है l एक भूख साहित्य के सृजक को मसीहा बना देता है और एक भूख छद्म साहित्यकार को खलनायक बना देता है l अब आप के सोच विचार पर निर्भर करता है, आपके दिल की जज्बात पर निर्भर करता है, कि आप किस भूख के पक्षधर हैं, और आप साहित्य का नायक बनना चाहते हैं या खलनायक l क्योंकि इतिहास साक्षी है कि किसी की भूख मजदूरी दे सकती है और किसी की भूख किसी के महल को खंडहर में तब्दील भी कर सकती है l

संपर्क भाषा भारती

साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, अक्तूबर—2022, RNI-50756

दस पुस्तकें जिनका लोकार्पण बसंत पंचमी, 26 जनवरी-2023 को तय है :

1. पुरुष व्यथा कथा : 2022
2. नारी व्यथा कथा : 2022
3. तीसरा पहलू : किन्नर कथा 2022
4. हिन्दी के श्रेष्ठ ग़ज़लकार : 2022
5. श्रेष्ठ कवयित्रियाँ : 2022
6. उत्कृष्ट कहानियाँ : 2022
7. उत्कृष्ट बाल कहानियाँ : 2022
8. श्रेष्ठ व्यंग्यकार : 2022
9. श्रेष्ठ लघुकथाकार : 2022
10. श्रेष्ठ महिला लघुकथाकार : 2022

1. पुस्तकों का प्रकाशन आंशिक लेखकीय सहयोग द्वारा प्रस्तावित है।
2. लघुकथा पुस्तक में एक रचनाकर के छः पृष्ठ निर्धारित होंगे।
3. कविता और ग़ज़ल पुस्तक में भी लेखक को छः पृष्ठ दिए जाएंगे।
4. रचनाओं को संपादक द्वारा चयनित किया जाएगा।
5. पुस्तक प्रकाशनोपरांत दो लेखकीय प्रतियाँ लेखक को प्रदान की जाएंगी।
6. पूर्व अनुरोध पर लेखकों को अधिक प्रतियाँ प्रकाशित मूल्य से 30% कम मूल्य पर दी जाएंगी।
7. लेखक को अपनी रचना का दो बार प्रूफ शोधन, प्रूफ प्राप्त होने के 7 दिन के अंदर करना होगा।
8. रचनाएँ मंगल अथवा यूनिकोड फॉन्ट में ही टाइप करके भेजी जाएँ।
9. रचनाकार, पासपोर्ट फोटो सहित अधिकतम 150 शब्दों में संक्षिप्त परिचय भेजें।
10. सभी पुस्तकों का प्री-प्रिंटिंग प्रोसेस 31 दिसंबर तक पूरा करने का लक्ष्य है।
11. रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेजी जाएंगी तो उनका प्रूफ शोधन जल्दी हो सकेगा।
12. अशुद्धियों से बचना प्रकाशन का प्रमुख लक्ष्य रहेगा।
13. पुस्तकों का लोकार्पण नई दिल्ली में ही प्रस्तावित है।

प्रकाशन सहयोग : saubhagyapublication@gmail.com

सहयोग 60/-